मीठे प्रवचन- १

"दृश्य अंतर का"

''प्रवचनकार''
एलाचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशकः
श्री सत्यार्थी मीडीया
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

ॐ ह्रीं नमः

चतुर्थ संस्करण : अक्टूबर 2014
प्रतियाँ : 2,000

मीठे प्रवचन- 1

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

मंगलाशीषः
प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

श्री सत्यार्थी मीडीया प्रकाशक
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)
मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''
मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

रुपये 100/-

संपादकीय

प्रिय वाक्य प्रदानेन, सर्वे तुष्यंति जंतव : ।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं, वचने का दरिद्रता ।।
(सा. स. आ० श्री कुलभद्र कृत)

अर्थात - प्रिय वाक्य सभी प्राणियों को संतुष्टि प्रदान करते हैं, इसलिए प्रत्येक प्राणी को प्रिय वाक्य बोलना चाहिए । यदि तुम्हारे पास किसी को भेंट करने के लिए रत्नादि नहीं हैं, सुस्वादु भोजन नहीं है, वस्त्र व आभूषण नहीं हैं, गगन चुम्बी उत्तुंग भवन नहीं तो कोई बात नहीं किन्तु शिष्ट, मिष्ट, इष्ट वचन बोलने में दरिद्रता या कंजूसी क्यों? बुंदेलखण्ड की एक कहावत है "यदि गुड़ नहीं दे सकते,तो कम से कम गुण जैसी बात तो कहो ।" अर्थात् वचन तो गुड़ और शक्कर से भी मीठे होते हैं। गुड़- शक्कर तो कदाचित् मधुमेह के रोगी को हानिकारक हो सकती है किंतु, मिष्ट वचन सभी प्राणियों को सुखद व शांतिप्रद होते हैं। नीतिकार महाकवि कबीर भी कहते हैं -

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ।।

अर्थात - वाणी ऐसी बोलनी चाहिए जो अपने मन में विद्यमान क्रोध, मान, मायाचारी, औद्धत्यता, छल -कपट, लोभ व मोहादि के परिणामों को शांत करने वाली हो । जिसको सुनकर श्रोतागण व वक्ता दोनों ही आत्मशांति रूपी महाविभूति को प्राप्त कर सकें ।

विद्वतवर दौलतराम जी ने भी साधु पुरुषों के वचनों के संबंध में लिखा है -

"भ्रम रोग हर जिनके वचन मुखचन्द्र तै अमृत झरैं ।"

अर्थात् - साधु पुरुषों के वचन भ्रम रूपी रोग के निवारण करने वाले अमृतोपमा होते हैं, जैसे मानो सुधाकर - सुतामृत वर्षा कर रहा हो । वाणी से ही कोयल और कौआ की पहचान होती है। ध्वनि से ही कांसे - रांगे, चाँदी - जस्ता, पीतल व सोने की पहचान होती है। नीतिकारों, विद्वानों, ऋषि मनीषियों ने कहा है कि -

वाङ्. माधुर्यात् सर्वलोक प्रियत्वं,वाक्पारूष्यात्स्वोपकारोऽपि नष्ट : ।
किं तद् द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं,कि वा लोके गर्दभेनापनीतं ।।

वचन की मधुरता से सब लोगों का प्रेम प्राप्त होता है और वचनों की कठोरता से किया हुआ अपना उपकार भी नष्ट हो जाता है। कोयल ने लोक में क्या दे दिया और गधे ने क्या छीन लिया? अपनी वाणी से ही प्रियता और अप्रियता को प्राप्त होते हैं।

एकापि कला सकला : वचनकला किं कलाभिरन्याभिः ।
वरमेका कामगवी जरदगवां किं सहस्रेण ।।

एक वचन कला ही सम्पूर्ण कला है, अन्य कलाओं से क्या प्रयोजन है? एक कामधेनु का होना अच्छा है, हजारों वृद्ध गायों से क्या प्रयोजन है?

किं किं नोपकृत, तेन किं न दन्तं महात्मना ।
प्रियं प्रसन्नवक्त्रेण प्रथमं येन भाषितम् ।।

जिस महात्मा ने प्रसन्नमुख होकर एक बार प्रिय भाषण कर लिया उसने क्या - क्या उपकार नहीं किया और क्या - क्या नहीं दिया?

हितं मितं क्रियायुक्तं सर्वसत्त्व सुखावहम् ।
मधुरं वत्सलं वाक्यं वक्तव्यं धर्मवत्सलैः ।।

धर्मस्नेही मनुष्यों को हित, मित, क्रिया सहित,सब जीवों को सुखोत्पादक मधुर और स्नेहपूर्ण वाक्य बोलने चाहिए ।वचन ही व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान कराने वाले होते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी एलाचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज से समन्वित जीवंत शास्त्र है। इसमें लिखे मीठे प्रवचनों के अंश मानव को धर्म की प्रेरणा देने वाले हैं।

संकलन, प्रकाशन, मुद्रण, प्रूफरीडिंग एवं अन्य कार्यों में भी जो - जो भव्य जीव सहयोगी रहे हैं उन सभी को प. पू. गुरुदेव का वात्सल्यपूर्वक शुभाशीष

शकरपुर दिल्ली
11/10/2014

गणिनी आर्यिका गुरुनंदनी
संघस्थ - एलाचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव

अनुक्रमणिका

राम चदरिया नहीं नजरिया हो	7
जीवंत जीवन	8
ज्ञानतरू के फल	9
जिसकी मानों उसकी मानो भी तो	10
जर के चक्कर में जर जर	11
जीवन में गिरावट क्यों?	12
सम्पत्ति नहीं संस्कार	13
मुखिया मुख सा चाहिए	14
मानव की जड़े	15
नींव को देखो	16
चरणों की पूज्यता आचरण से	17
जैसी करनी वैसी भरनी	18
उन्नति तभी जब उत्नति हो	19
निर्वाह नहीं निर्माण व निर्वाण भी	20
संतो का कर्त्तव्य	21
कष्ट सहना व्यर्थ है	22
सबसे खतरनाक ग्रह - परिग्रह	23
गुरू कुम्हार शिशु माटी	24
किसका बल क्या है?	25
अन्तरात्मा की आवाज	26
पूरा जीवन ही खराब	27
आत्म निधि के भोक्ता	28
जब पैमाना ही गलत हो	29
जीवन रथ के बैल	30
क्या लटकते हुए ही सड़ना है	31
पके बाल या कच्चा दिल	32
आत्मा की गहराई में	33
सर्वनाश के लक्षण	34
मुर्दो की पदोन्नति नहीं	35
अर्थी के पहले	36
कृष्ण के मुकुट में पंख क्यों?	37
उन्हें लोग मूर्ख कहते हैं?	38
मन की झाड़	39
शुद्धि भजन की नहीं भोजन की भी	40
न वह दास,न कोई उसका दास	41
कैसे श्रोता हो आप	42
तो क्या हानि है?	43
मॉ के इर्द-गिर्द है सम्पूर्ण जीवन	44
महल नहीं मरघट है तब तक	45
क्यों रहेगी वहॉ शान्ति	46
लड़के की मॉ की कुण्डली भी	47
पुत्रों को अब मित्र बना लो	48
यह कोई नई बात थोड़े ही है	49
समाचार पत्रों की अहमियत	50
किसी को बंधन में डालना उपासना नहीं	51
चाहें आम और बोवें बबूल	52
आपकी सेवा में समर्पित अर्घ	53
जीना है तो जीना बनकर	54
इनकी कभी अपेक्षा मत करो	55
अवसर मत चूको	56
संकल्प में दृढ़ता	57
जैनों की उदारता	58
सत्य और सत्यार्थी	59
धार्मिक नहीं धर्मात्मा बनो	60
इतना ख्याल और	61
ना रति वह नारकी	62
अपने घर को स्वर्ग कैसे बनायें?	63
सिद्धालय के समाचार	64
स्वच्छता की आवश्यकता	65
क्या तुम ये नहीं मानते?	66

सफलता का मार्ग 67
जीवन रूपी गाड़ी 68
जीवन की असलियत 69
चाहत 70
क्या फर्क पड़ता है 71
इच्छाओं को उत्पन्न ही मत होने दो 72
महत्वपूर्ण 73
खुद-आ 74
खोजो मत खोदो 75
अभी कन्या क्वारी क्यों? 76
तुम भी बनो ऐसे योद्धा 77
पहला सुख निरोगी काया 78
स्वतन्त्रता-परतन्त्रता 79
अति क्यों करें 80
क्या है सदाचार 81
आदर्श बिन आदर्श नही बन सकते 82
पदार्थों का भी सदुपयोग 83
गुरू का रहस्य 84
माला बनना ही लाभ है 85
तपस्या की श्रेष्ठता 86
उपचार करो,किन्तु उचित रीति से 87
जरूरी है जागरण भी 88
मंगल परिणाम के बिना 89
क्या है धर्म का आधार 90
कैसी हो भक्ति 91
क्या है आगम शास्त्र/श्रुत ज्ञान 92
भाव संगति का 93
संत समागम 94
दुःख का कारण 95
सप्त सकारी चूर्ण 96
स्व का अध्यन ही है-स्वाध्याय 97
''द''वर्ण का उपदेश 98
अनेक से भी एक 99
महत्वपूर्ण साधन नहीं साधना हैं 100
आओ अपनी समीक्षा करें 101
नीतिकार कहते हैं 102
सद् गृहस्थों के मूल कर्म 103
चिंता छोड़ो चिंतन करो 104
कल्याण की आठ बातें 105
मोक्ष का पंथ 106
स्वकीय पुण्य के बिना 107
जैसे निमित्त वेसे भाव 108
आज यहॉ भी सूर्योदय 109
को बैरी को मित्र हैं 110
साथ में ये भी देना 111
हॉ तुम भी तो उन्हीं के वंशज हो 112
आत्म भवन में मिले सुख अपारा 113
आओ नाश्ता तो कर ही लो 114
योद्धा बनो तो ऐसे 115
क्या है अनुशासन? 116
न धन है,न समय और न ही शक्ति 117

1

''राम चदरिया नहीं नजरिया हो''

आप सभी प्रातः काल से ही प्रभु परमात्मा का नाम स्मरण करते हैं, उनके नाम को भूल न जायें इसलिये आपस में जय जिनेन्द्र, राम - राम, जुहार आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं, जय जिनेन्द्र व राम - राम बोलना तभी सार्थक है, जब आप उन जैसी या उनके द्वारा उपदिष्ट धर्मानुसार प्रवृत्ति करें, यदि आप रावण जैसी प्रवृत्ति कर रहे हैं,तो राम का नाम तुम्हारा क्या कल्याण करेगा, जय जिनेन्द्र कहने से भी क्या होगा? अपवित्र मन, तन, भोजन, भजन करने वाले व्यक्ति को परम पवित्र भगवान का नाम न लेकर अपने ग्रुप के सुप्रीमों का नाम ही लेना चाहिये, राम - राम न कहकर रावण - रावण, जय जिनेन्द्र न कहकर कमठ - कमठ, कंस - कंस कहना चाहिये । जिससे उन्हें अहसास हो कि उनकी प्रवृत्ति कैसी है? ऐसी प्रवृत्ति वालों का क्या हुआ? मेरा भी क्या वही हाल नहीं होगा? इस प्रकार के चिन्तन से अपने जीवन को बदला जा सकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

2

"जीवंत जीवन"

सम्यक् श्रद्धा के बिना जीवन मुर्दा के समान है, आस्था के बिना यह नर भव अर्थहीन है, जिस प्रकार विद्युत के बिना विद्युत उपकरण निरर्थक है उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना समस्त क्रिया, चर्या, आचरण व्यर्थ सा ही प्रतीत होता है, इतना ही नहीं जैन संस्कृति का मूल सम्यक्त्व ही है, भारतीय संस्कृति में भी सदाचार के कारण चरणों की पूजा की जाती है, यह सदाचार व सदाचार की पूजा ही पूजक को पूज्य बनाती है।

प्राणों/चेतना के बिना शरीर श्रृंगार विद्वानों व सज्जनों की दृष्टि में हास्यास्पद है उसी प्रकार समीचीन श्रद्धा से रहित धर्म की समस्त क्रियाएँ विडम्बना मात्र है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

3

"ज्ञानतरु के फल"

सद्ज्ञान का फल हेय, उपादेय व उपेक्षावृत्ति है जो आत्मा के लिये अहित करने वाले पदार्थ हैं, उनका त्याग करना चाहिये, जो आत्मा के कल्याण में अनिवार्य निमित्त हैं, उनकी प्राप्ति एवं शेष पदार्थों के प्रति उपेक्षावृत्ति ही सम्यग्ज्ञान रूपी वृक्ष के फूल हैं एवं वैराग्य व संयमाचरण उस वृक्ष के मृदु फल हैं। फल रहित वृक्ष, गंध रहित पुष्प, पुत्र रहित वंध्या स्त्री के समान व्यर्थ हैं, अतः तुम भी अपने ज्ञान रूपी वृक्ष पर उक्त फल व फूल लगने दो तभी आपका ज्ञान रूपी वृक्ष सफल व सार्थक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

4

''जिसको मानों उसकी मानो भी तो''

जिन प्रभु परमात्मा, आदिनाथ भगवान, महावीर भगवान, राम, हनुमान, बुद्ध, ब्रह्मा, कुन्दकुन्दाचार्य, यति वृषभाचार्य, समन्तभद्र स्वामी, उमास्वामी, शिवकोटि आचार्य, पूज्यपाद स्वामी, देवनंदि आचार्य, अकलंक स्वामी, वीरसेन स्वामी, जिनसेन स्वामी, तुलसी, वाल्मीकि, स्थूलभद्र, रहीम, कबीर, रसखान, एकनाथ आदि को यथार्थ मानना तभी सार्थक है, जब हम उक्त संत, अरिहंत, भगवंत की कही वाणी को भी मानें । इनकी बात को न मानने का अभिनय खुद के साथ बेईमानी है और खुदा को धोखा देना है तथा समाज के साथ बेईमानी है, नाइंसाफी है। अतः कल्याण तभी संभव है, जब आप भी इन महापुरुषों की बात मानें। इन महान पुरुषों ने अपने जीवन में कभी अण्डा, माँस, मदिरा का सेवन नहीं किया, उक्त प्रभु परमात्मा के भक्तों को भी इसका सेवन कदापि नहीं करना चाहिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

5

''जर के चक्कर में जर - जर''

जो व्यक्ति जर, जोरू जमीन में आसक्त है अथवा जरा से पस्त पड़े हैं, उनके जीवन में निर्जरा की उपलब्धि कैसे हो सकती है? जर और जरा निकल जाये तो निर्जरा होना प्रारम्भ हो । जरा तुम निर्जरा को भी देखो, अभी जर के चक्कर में पड़कर जर - जर हो गये, जरा ने तुम्हें पकड़ लिया है, जोरू के जाल में फँसे हो, जमीन तुम्हें भूमि पर पटकने या तुमसे आलिंगन करने को आतुर है, फिर भी निर्जरा की नहीं सोचते, जरा भी तुम संकल्प कर लो तो क्या जरा तुमको जर - जर कर सकती है? तो आज ही संकल्प कर लो, कि मैं जर, जोरू, जमीन से मुक्त हो कर्मों की निर्जरा करने के लिए संयम व तप ग्रहण करूँगा या अभी करता हूँ?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

6

''जीवन में गिरावट क्यों?''

जहाँ गिरावट, बनावट, सजावट, मिलावट और कड़वाहट होती है, वहाँ जीवन में नियम से गिरावट ही होती है, जीवन में फिर मुस्कराहट नहीं ठहर पाती, अतः हट, वट, नट, कट को झट - पट छोड़ दें, और फटा - फट अपने आपको अपने आप से जोड़ दें, यही जीवन की सार्थकता का उपाय है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

7

''सम्पत्ति नहीं संस्कार''

प्रत्येक माता - पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपनी संतान को सुसंस्कार दें, भौतिक सम्पत्ति नहीं, क्योंकि भौतिक सम्पत्ति सुसंस्कारों के बिना दुर्गति का कारण बन जायेगी और तुम्हारी संतान तुम्हारी दुर्गति करा देगी। सम्पत्ति - विपत्ति का मुख पृष्ठ है, जबकि संस्कार परमात्मा का साकार रूप प्राप्त कराने के लिये प्रवेश पत्र है। सुसंस्कार सुख पूर्वक सत्य से साक्षात्कार कराने वाले होते हैं, जबकि धन धर्म को नष्ट करने वाला है और विभव - भव का विशेष कारण है।"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

8

''मुखिया मुख सा चाहिए''

घर के मुखिया को या समाज के प्रधान को या देश के राजा को प्रांतीय नेता या संस्था को, संघ के प्रधान या नायक या संचालक को मुख की तरह होना चाहिये । मुखिया प्रत्येक वर्ग की इकाई का अपनी तरह ख्याल रखे, मुख से ग्रहण किया गया भोजन यथानुपात समस्त अंगों को सारभूत रूप से मिलता है, इस प्रकार मुखिया सबके हित में कार्य करे, किसी के साथ पक्षपात न करे, अन्यथा शरीर रूपी परिवार संघ या समाज, प्रांत या राष्ट्र समीचीन रूप से जी नहीं सकेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

9

" मानव की जड़ें "

वृक्ष की वृद्धि, पुष्पोत्पत्ति व फलदान वृक्ष की जड़ों पर आधारित है, वृक्ष जड़ों द्वारा जल व खाद्य पदार्थ ग्रहण करके सम्पूर्ण अंगों में भेजता है, गन्दे खाद्य में से सारभूत शक्ति को सम्पूर्ण पत्तों, पल्लवों व फलों तक पहुँचाता है। यदि वृक्ष जड़ों को कुरूप व अनुपयोगी मानकर त्याग देगा तो वह वृक्ष ही सूख जायेगा अर्थात् जिस परिवार में वृद्ध माता - पिता या दादा - दादी उपेक्षित कर दिये जाते हैं, वह परिवार भी सूख जाता है। जड़ की पुष्टि व संवर्धन से ही सारे वृक्ष का विकास संभव है और मूल के बिना वृक्ष ही असंभव है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

10

''नींव को देखो''

एक परिवार रूपी उत्तम भवन का निर्माण तभी संभव है जब उसकी नींव हो । बिना नींव के कोई महल खड़ा नहीं हो सकता, यहाँ तक कि झोपड़ी के लिये भी कम से कम चार टेक या स्तंभ लगाने की आवश्यकता होती है। उन टेकों को भी जमीन में गाड़ना पड़ता है, अन्यथा वे खिसक जायेंगी और झोपड़ी धराशायी हो जायेगी । महल का सारा हिस्सा ऊपर से दिखाई देता है, यदि सर्व भाग दिखाई देने लगे, तो वह महल टिक नहीं सकता, नींव यदि गहरी और मजबूत है तो महल भी बहुत मजबूत होगा। प्रत्येक परिवार के वृद्ध पुरुष नींव के पत्थर के समान हैं अथवा व्यक्ति का गुप्त पुण्य नींव के पत्थर के समान है, यदि अपना महल मजबूत बनाना है, तो गुप्त साधना करो, वृद्धों की सेवा करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

11

''चरणों की पूज्यता आचरण से''

आचरण की पूज्यता से ही चरणों की पूज्यता है। जिसका आचरण ही पूज्य नहीं है, उसके चरण कौन पूजेगा? जो अपने चरणों को पुजवाता है, किन्तु आचरण से रिक्त है, ऐसा व्यक्ति आत्मघाती है, छली है, कपटी है, प्रवंचक है। वह स्वयं तो भव सागर में पतित होगा ही अपने पूजकों व प्रशंसकों को भी पतित कर देगा, निर्दोष आचरण करने वाले महापुरुषों के चरणों की शरण को प्राप्त कर लेना सदाचरण की ओर बढ़ाया गया एक कदम ही है जो आपको कभी लोक शिखर/ सिद्धालय तक भी पहुँचा देगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

12

''जैसी करनी वैसी भरनी''

क्या कभी बबूल बोने से किसी को उस वृक्ष पर आम के फल मिले हैं? क्या अग्नि कुण्ड में किसी को शीतलता मिली है? क्या किसी को विष का सेवन कर अमरत्व की प्राप्ति हुई है? क्या किसी मोही जीव को आत्मसुख मिला है? नहीं मिला, तब क्या किसी को असंयम व मिथ्याचरित्र से आत्मगुण रूपी निधि मिल सकेगी? अतः यह निश्चित है, ध्रुव सत्य है कि कुपथ पर चलने वाला व्यक्ति कभी सुपथ की मंजिल को नहीं पा सकता। अतः अपनी जिद्द को छोड़कर अपनी दिशा को बदल लें, सुनिश्चित है, कि तब आपकी दशा भी बदल जायेगी और अंतिम मंजिल भी।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

13

''उन्नति तभी जब उत्नति हो''

उन्नति उसी की संभव है जिसकी उत्+नति हो। जो उत् अर्थात् अपनी आत्मा की ओर, निज स्वभाव की ओर नत हुआ है, उसकी उन्नति होती है जो ऐसा नहीं करता उसकी अवनति सुनिश्चित है, जिसकी नति इत् है वह तो भव में ही पतित रहेगा, जिसकी इत्+ आस है वह भव में डूब रहा है जिसकी उत्+ आस है वह उदास है,निज के पास है अब तुम नति+ इत (यहाँ) मत करो... तुम उत्+ नति करके अपनी उन्नति करो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

14

''निर्वाह नहीं निर्माण व निर्वाण भी''

जीवन निर्वाह तो संसार के समस्त प्राणी करते ही हैं चाहे वे लापरवाह हों या सर्वचाह, चाहे बेपरवाह हों या स्वात्मचाही या शिवराही । आज आवश्यकता मात्र निर्वाह की नहीं, जीवन निर्माण की भी है क्योंकि जीवन में समीचीन निर्माण के बिना कर्मों से निर्वाण होना असंभव है, अतः निर्माण जरूरी है। मनुष्य ही जीवन का समीचीन निर्माण करने में समक्ष व समर्थ है, वह भी सद्गुरुओं के सानिध्य से, सेवा - भक्ति, दान - उपासना से, आगम ग्रन्थों के स्वाध्याय व सच्चे देव की पूजा, अर्चना, स्तुति, वंदना से, अहिंसा मयी धर्म की अनुपालना, भावना, उपासना व साधना करके ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

15

''संतों का कर्त्तव्य''

जब तक पर पदार्थों से सुख प्राप्ति की धारणा मन में विद्यमान है, तब तक उस व्यक्ति को पर पदार्थों के संग्रह से कोई नहीं रोक सकता । यदि उसे बाहरी पदार्थ संग्रह हेतु नहीं भी मिले, तब भी वह अपने अंतरंग में उन पदार्थों का ढेर लगायेगा जिन पदार्थों की प्राप्ति से सुख की धारण बना चुका है। अतः आज परिग्रह के त्याग की आवश्यकता कम है, उसे सद्ज्ञान, सद्बुद्धि की ज्यादा आवश्यकता है, उस मोही प्राणी की मिथ्या धारणा को तोड़ना बहुत आवश्यक है। आज संतों का अनिवार्य कर्त्तव्य यही है कि वे भव्य जीवों के लिए आत्म कल्याण का उपदेश दें।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

16

''कष्ट सहना व्यर्थ है''

जो कष्ट धर्म या धर्मात्मा की रक्षा के लिए नहीं उठाया वह कष्ट सहना व्यर्थ है, जो दान सत्पात्रों को नहीं दिया वह दान व्यर्थ है, जो भोजन आरोग्यवर्धक - स्वादिष्ट व पौष्टिक न हो वह भोजन व्यर्थ है, जो ज्ञान संयम, सदाचार व तप का कारण नहीं है, वह ज्ञान व्यर्थ है, जो पुरुष स्वपर हित में काम न करे वह पुरुष व्यर्थ है, जो स्त्री शील रहित सुसंस्कारी पुत्र को जन्म देने में असमर्थ है वह स्त्री व्यर्थ है तथा जो शिष्य विनय व समर्पण से रहित है वह शिष्य व्यर्थ है, जो भक्त निः स्वार्थ भक्ति, पूजा व सच्ची आस्था से रहित है वह भक्त व्यर्थ है, साहस न हो तो युद्ध में शस्त्र व्यर्थ है, ज्ञान न हो तो शास्त्र व्यर्थ है,होश न हो तो जोश व्यर्थ है, ज्ञान न हो तो क्रिया व्यर्थ है, सम्यक् श्रद्धा न हो तो संयम तप व्यर्थ है, भूख न हो तो भोजन व्यर्थ है, रोग नहीं है तो औषधि व्यर्थ है, सदुपयोग करने की कला व ज्ञान न होने पर हर वस्तु व्यर्थ है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

17

''सबसे खतरनाक ग्रह - परिग्रह''

परिग्रह पाँचों पाप का जनक व सहभागी है, जहाँ पर परिग्रह होगा वहाँ चारों पाप भी अनिवार्य रूप से, नियम से पाये जाते हैं किन्तु वर्तमान काल में तत्त्व ज्ञान से दीन - हीन एवं मूर्ख व्यक्ति उस परिग्रह को पाप ही नहीं मानते, शायद इसलिए तो दिन - रात इसी के संग्रह में लगे रहते हैं। यदि परिग्रह को पाप मान लें, तो क्या उन्हें परिग्रह से विरक्ति नहीं होगी? कोई भी जीव दुःख नहीं चाहता किन्तु पाप दुःखों का साक्षात् कारण है। जो परिग्रही है या (परिग्रह धारी) समस्त पापों में लिप्त है, वह नियम से दुर्गति का पात्र है, अत्यंत दुःखी है। ऐसे व्यक्ति पर संत पुरुषों को क्षमा - दया करना आवश्यक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

18

''गुरु कुम्हार शिशु माटी''

गुरु को कुंभकार के समान होना चाहिए और शिष्य को मिट्टी की तरह। जिससे कुंभकार रूपी गुरु, शिष्य रूपी मिट्टी का कुछ बना सके। मिट्टी मिटती है तभी तो नया आकार पा सकती है, शिष्य पिटता है तभी तो परमात्मा बन सकता है, कुंभकार मिट्टी को जल सिंचन कर गलाता है फिर आकार देता है, बाद में अन्दर हाथ का सहारा देकर ऊपर से पीटता है, तब घड़ा सुन्दर आकृति में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार गुरु भी शिष्य के अन्दर वात्सल्य रूपी हाथ का सहारा दिये रहता है, ऊपर से डाँट - फटकार भी निरन्तर चलती रहती है तभी तो शिष्य का विकास होता है, गुरु केवल वात्सल्य ही वात्सल्य देते जाऐं तो शिष्य का बिगाड़ हो जायेगा यहाँ तक कि शिष्य अपने संयम से भी हाथ धो बैठेगा और सुनो ! यदि शिष्य पर अधिक कड़क अनुशासन लागू कर दिया जाए, वात्सल्य नहीं दिया तो नया शिष्य वहाँ टिक नहीं सकेगा, न संघ में और ना ही संयम के मार्ग पर ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

19

''किसका बल क्या है?''

विद्वान का बल ज्ञान है, योगी का बल ध्यान है, मूर्खों का बल अभिमान है, व्यापारी का बल बुद्धि है, तांत्रिक का बल सिद्धि है, नेता का बल प्रसिद्धि है, भक्त का बल भक्ति है, सैन्य का बल शक्ति है, सेवक का बल सेवा है, शिष्य का बल विनम्रता है, अधीनस्थ का बल कर्त्तव्य परायणता है, शासन की शक्ति कानून और राजस्व या सत्ता है, नारी का बल शील है, दुष्टों का बल हिंसा है, मूर्खों या हठी जनों का बल मौन है, वीरों का बल साहस है, बच्चों का बल रोना है, पुजारी का बल प्रभु कृपा ही समझना चाहिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

20

''अन्तरात्मा की आवाज''

जिस कार्य के करने से मन शंकित हो, अंतरंग में भय का संचार होता हो, लोक निंदा होती हो, करते समय लज्जा या उपहास भी सहन करना पड़े, कार्य को करने में बार - बार अपशकुन होते हों, स्व - पर का प्रत्यक्ष घात हो रहा हो, अथवा आत्मा संक्लेशित हो रही हो, तो ऐसे कार्य मत करो तुरन्त उसे छोड़ दो क्योंकि वह पाप कर्म है,जो कि अनुचित है। तथा जिस कार्य को करने में आनन्द, उत्साह व परम प्रीति का अनुभव होता हो, दूसरे इसका सम्मान करें, कषायमंद हों, परिणाम विशुद्ध हों,अंतरंग में खुशी की लहर उठे, चित्त जिसके लिए बार - बार प्रेरणा दे, ऐसे कार्य को अवश्य करें अन्तर आत्मा की आवाज सुनकर ही किसी उचित एवं सफल निर्णय को लेना चाहिए क्योंकि अन्तरात्मा की आवाज कभी गलत नहीं होती ।

21

''पूरा जीवन ही खराब''

अनुचित व अपरिमित आहार से पेट, आलस्य से मन, अभक्ष्य सेवन व अनियमित विषय का सेवन करने से तन, क्रोध - मान - माया - लोभ से वचन, कर्कशा, ईर्ष्यालु, शंकालु, झगड़ालु स्त्री से रात, प्रातः कालीन कलह से दिन, अधिक धन से बुद्धि, श्रद्धा न हो तो संयम, विवेक बिना आचरण, क्रोधी व्यक्ति से व्यवहार, मूर्ख पुत्र से कुल, कर्त्तव्यों का पालन न करने से जीवन, असंयम से समाधि, अतिहास्य से मैत्रीभाव तथा धार्मिकता न होने से पूरा जीवन ही खराब हो जाता है।

22

''आत्म निधि के भोक्ता''

ब्रह्मचर्य का आशय "भोग निवृत्ति भी है और भोग प्रवृति भी है" । प्रथम तो पंचेन्द्रियों के विषयों से निवृत्ति होना आवश्यक है तदुपरान्त आत्म निधि के भोक्ता बनना भी अत्यंत जरूरी है। यह सब प्रवृत्ति तभी संभव हो सकती है, जब ब्रह्म स्वरूपी आत्मा में रमण होना प्रारम्भ हो जाये और ब्रह्मस्वरूपी आत्मा में रमण तभी संभव है, जब मन से, वचन से, काय से, भव वनिता से रमण का त्याग हो। पर पदार्थों के साथ रमण करने वाला भव भ्रमण ही करता है अतः पर से नाता तोड़ना और अन्तरंग से पर को छोड़ना नितांत आवश्यक है। तभी तो निज से नाता जुड़ना संभव होगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

23

''जब पैमाना ही गलत हो''

बड़ा वही होता है जिसमें बड़प्पन हो, केवल नाम - मात्र से कोई बड़ा नहीं होता और न ही कोई ऊँचे आसन पर बैठने से बड़ा कहलाता है। क्या चूहा पहाड़ की चोटी पर चढ़ने से बड़ा हो गया और हाथी नीचे खड़ा होने से छोटा हो गया? नहीं, यह छोटे - बड़े को नापने का पैमाना ही गलत है, सही पैमाना तो यही है कि जो अच्छे - अच्छे काम करे वह बड़ा है, जो बुरे - बुरे काम करे वह छोटा है, लघु है। लोक व्यवहार में भी एक व्यंजन को बड़ा कहा जाता है। किन्तु वह बड़ा भी ऐसे ही नहीं बन जाता उड़द को दल कर दाल बनायी जाती है, पुनः दाल को भिगो कर नन्हा पीसा जाता है, उसमें नमक - मिर्च आदि तीखे मसाले डालकर गर्म तेल में पकाने के लिए छोड़ दिया जाता है, अग्नि परीक्षा के बाद उसे खट्टे दही या इमली या आम के मसाले से युक्त खटाई में छोड़ा जाता है, तब वह बड़ा कहलाता है, इसी प्रकार जो व्यक्ति पाप कर्म की चक्की में दला गया, अपनों ने ही जिसे पीसा, तथा संघर्ष की अग्नि में तपा गया हो, संकटों के तीखे मसालों के बीच पला हो और आज भी खटाई में पड़ा हो, वही तो बड़ा कहलाने के योग्य होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

24

''जीवन रथ के बैल''

जीवन रूपी रथ के दोनों बैल अलग - अलग दिशा में गाड़ी को खींचने में संलग्न हैं,इसलिए तो यह जीवन रथ कहीं पहुँच नहीं रहा है, इन दुःखों के कारणों को तो छोड़ना नहीं चाहते और सुख प्राप्ति के लिए कोल्हु के बैल की तरह परिधि पर अभिनय करते रहते सुख रूपी मंजिल मिले भी तो कहाँ से? सर्वप्रथम हमें अपना लक्ष्य सम्यक् बनाना होगा तदनुरूप कदम भी उसी दिशा में बढ़ाने आवश्यक हैं, जीवन रूपी रथ के दोनों बैलों को एक ही दिशा में ले जाना आवश्यक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

25

''क्या लटकते हुए ही सड़ना है?''

जानते हो? वृक्ष पर लगा हुआ फल जब टूटने को होता है तब वह पक जाता है, यूँ तो कभी आंधी के झोंके में कच्चा फल भी कई बार टूट जाता है। वह फल पहले बहुत छोटा होता है बाद में विकसित हो जाता है, पकने पर तो नियम से टूटेगा ही, पकने पर पकड़ कमजोर हो जाती है। इसी प्रकार मनुष्य जब पक जाता है तब तो नियम से टूटेगा ही, पकड़ भी कमजोर होना चाहिए। बहुत कम मनुष्य होते हैं जो पूर्ण पक पायें, अन्यथा आंधी के आम की तरह बीच में भी टूट सकते हैं, किन्तु आश्चर्य इस बात से होता है कि, पूरे बाल पक गये, शरीर पक गया, पक कर सूख गया, टूटने को है फिर भी तुम्हारी गृहस्थी की पकड़, राग - द्वेष - मोह की पकड़ कमजोर नहीं हुई जैसे फल वृक्ष से जुड़ा है वैसे ही आप परिवार से जुड़ें हैं, टूटने से पहले पकड़ ढीली कर दो अन्यथा पेड़ पर लटकते हुए ही सड़ जाओगे, पके हुए टूट गये तो जीवन सार्थक हो जाता है, परमात्मा का रसास्वादन भी कर सकते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

26

''पके बाल या कच्चा दिल''

देखो ! जब तक नारियल कच्चा होता है तब तक उसे ऊपर से चोट मारो या तोड़ो अन्दर की गरी भी टूट जाती है, किन्तु जैसे ही नारियल पक जाता है तब बाहर से तोड़ने पर अन्दर की गरी नहीं टूटती, क्योंकि पकने पर उसका बाहर के छिलके (आवरण) से सम्बन्ध टूट गया है इसलिए बाहर से टूटने पर भी वह सुरक्षित है, इसी प्रकार जिसका दिल कमजोर होता है वह अपने (परिवार जन) को दुःखी देखकर मोह के कारण रोने लगता है। कहते भी हैं, कच्चे वैराग्य वाले शरीर पर कष्ट आते ही रोने लगते हैं पक जाने पर वह आत्मा को शरीर से अलग कर देता है, यही तो भेद विज्ञान है और यही है अन्तर दृष्टि। आश्चर्य होता है तुमको देखकर कि तुम बाहर से पूरे पक जाने पर भी अन्दर से कच्चे हो? यह विसंगति ठीक नहीं है कि बाल पके हैं और दिल कच्चे का कच्चा । अभी तुम्हें न आत्मज्ञान हुआ है न भेद विज्ञान ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

27

''आत्मा की गहराई में''

जब व्यक्ति नाक बंद कर किसी नदी, तालाब, नहर, झील, गड्ढे में डूब जाता है तो उसे बाहर नदी आदि के किनारे पर बैठे मनुष्यों का कोई विकल्प नहीं होता और न ही उसे बाह्य पदार्थों से, तन से कोई मोह या राग - द्वेष होता है किन्तु जैसे ही निकल कर वह ऊपर आता है और बाहरी पदार्थों को देखता है तब उसे पुनः विकल्प आने लगते हैं, इसी तरह अन्तर दृष्टि वाला महात्मा आत्मा के धर्म ध्यान में डूब जाता है, व धार्मिक अनुष्ठानों में लीन हो जाता है, तब वह भी शरीर आदि से बेखबर हो जाता है। आत्मा के सागर की गहराई में डूबने वाला भोगी भी शरीर आदि के विकल्पों से बेखबर हो आत्मा के आनन्द में ही मस्त रहता है। बाहरी नदी या जलाशय में डूबने या तैरने में क्या आनन्द आता है? यदि इसकी भी अनुभूति चाहते हो तो जलाशय में तैरो और डूबो, इसी प्रकार जिसे आत्मानुभूति को जानने की जिज्ञासा है उसे भी तत्त्व चिंतन में पंच परमेष्ठी की भक्ति में व आत्मध्यान में लीन हो जाना चाहिए तभी उस अनुभूति को प्राप्त कर सकोगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

28

''सर्वनाश के लक्षण''

घर के आंगन में खड़ा बूढ़ा वृक्ष और द्वार पर बिछी खटिया पर पड़े बूढ़े बाप पर काटने, छाँटने, डाँटने और बाँटने के लिए कुछ नहीं है उस वृक्ष को आँगन में खड़े रहने दो यदि वह फल नहीं देगा तो फूल तो देगा ही और फूल भी नहीं तो छाया तो देगा, छाया में भी गर कमी आ गई है तो कम से कम ऑक्सीजन तो देगा जो प्राणवायु है। इसी तरह बूढ़ा बाप भी अगर तुम्हें रुपया न दे और न ही तुम्हारा कोई काम कर सके तब भी वह अपना साया (संरक्षण) तो तुम्हें दिये ही है और उसमें भी दुआ, आशीर्वाद है, जिससे हजारों संकट दूर होते हैं और वृद्ध गैया और मैया भी क्या काटने के लिए है? जिसने तुम्हे जन्म दिया, दूध पिलाया और बड़ा किया है, जो तुम्हें प्यार से चूमती और चाटती है उसी गाय और माँ को दुनियाँ न जाने क्यों काटती और डाँटती है, जहाँ पर इन्हें काटा जाता है, वहाँ क्या सुख - शांति की एक झलक भी मिल सकती है? क्या ये सभी बुद्धि - विनाश और सर्वनाश के लक्षण नहीं हैं? यह गम्भीरता से सोचने का विषय है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

29

''मुर्दो की पदोन्नति नहीं''

जो अन्दर से मर चुका है वह तो चलती फिरती लाश है, मुर्दा है। मुर्दा तो आखिर मुर्दा ही है उसमें कोई परिवर्तन और प्रमोशन नहीं होता वह तो सड़ता है तथा वातावरण को बदबूदार बना देता है, जो इंसान सच्ची श्रद्धा, भक्ति, समर्पण से रहित है सदाचार, संयम और प्रेम वात्सल्य से खाली है वह भी मुर्दे के ही समान है। जिसमें आत्म - साधना, धैर्य, आनन्द, उमंग, उत्साह, स्वाभिमान, करुणा, शान्ति तथा आस्तिकपना नहीं है उसे कैसे कहें कि वह जीवित है? ऐसा व्यक्ति केवल खाने - पीने व श्वाँस लेने के लिए ही जिंदा है। अन्दर से तो मुर्दा के ही समान है, वह तो मात्र अपने जीवन का बोझ ढो रहा है, अरे ! जिन्दादिल वह कहलाता है, जो मौत के बाद भी अपने सत्कर्मों से अजर - अमर हो जाता है, किन्तु तुम तो मौत से डरकर, मौत के नाम से ही मौत आने से पहले ही डर जाते हो, मरे जा रहे हो । संत लोग तो अच्छी तरह मरण हो, इसीलिए संयम के साथ जीते हैं, एक तुम हो चैन के साथ जीने के लिए पल - पल असंयम के साथ मरे जा रहे हो ।"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

30

''अर्थी के पहले''

संसार में अधिकांश व्यक्ति धनार्थी, संतानार्थी, वामार्थी, सम्मानार्थी, नामार्थी और कामार्थी ही हैं, वे निरन्तर वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा, एषणा और गवेषणा के चक्कर में पड़े हैं, अब उन्हें सुख मिले भी तो कैसे मिले? उनके जीवन की कार्यक्रम सूची में तथा भावनाओं की श्रृंखला में न तो सुखेषणा शब्द है और न ही धर्मेषणा । क्या दामार्थी, कामार्थी, वामार्थी व नामार्थी जीवन में सच्चे सुख व शान्ति को प्राप्त कर लेंगे? अरे जब तक तेरी अर्थी नहीं निकली है, तब तक सच्चा विद्यार्थी, ज्ञानार्थी, धर्मार्थी, सुखार्थी, रामार्थी और आत्मार्थी बन जा, नहीं तो तुम्हारी अर्थी के साथ तुम्हारे समस्त अर्थों की अर्थी निकल जायेगी। अर्थी निकले इससे पहले जीवन में खुद और खुदा के प्रति तथा खुदा की खुदी के प्रति आस्था जगा लेनी चाहिए तभी जीवन सच्चे अर्थों में सफल और सार्थक हो सकेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

31

''कृष्ण के मुकुट में पंख क्यों?''

नवमें नारायण श्री कृष्ण के चित्र को आपने देखा होगा वे अपने मुकुट में मयूर के पंखों को धारण किये हैं और होठों पर बाँसुरी लगाए हुए हैं, पास में ही रखी है मक्खन की मटकी जिसमें हाथ डाले हुए हैं। क्या इन सबका रहस्य तुम आज तक जान पाये हो? यदि नहीं तो जान लो वे हरिवंश के तिलक बाइसवें तीर्थंकर महाश्रमण नेमिनाथ के परम भक्त थे, अतः उनकी पूज्यता को जग जाहिर करने हेतु मस्तक पर (उनकी पिच्छी के पंख जो उनका चिह्न है) मयूर पंख धारण किये हैं। तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि की सरलता व सहजता की प्रतीक चैन की बंसी उनके अधरों के मध्य है तथा अनेकांत धर्म से समन्वित और स्याद्वाद शैली से युक्त है मक्खन की मटकी । और उसे नयविवक्षा की शैली रूपी हाथ से वे ग्रहण कर रहे हैं, तभी तो वे भीतर के ज्ञान "गीता" के माध्यम से आध्यात्मिकता का इतना बड़ा संदेश जनता - जनार्दन को दे सके।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

32

''उन्हें लोग मूर्ख कहते हैं?''

संसार के व्यक्ति अपनी वृद्धावस्था की व्यवस्था हेतु बैंक बैलेंस बचा कर रखते हैं अथवा अपने पास धन - जेवर, जवाहरात या मकान - दुकान, भूमि या जमीन - जायदाद रखते हैं और ऐसा करने वालों को दुनिया बुद्धिमान भी कहती है, जो ऐसा नहीं करते उन्हें लोग मूर्ख कहते हैं, मैं उन्हें बुद्धिमान ही नहीं महाबुद्धिमान कहता हूँ जो इस भव की व्यवस्था के साथ - साथ पर भव की भी व्यवस्था बना कर चलते हैं। अर्थात् ख्याति, पूजा, लाभ व नाम की चाह से रहित होकर शुद्ध धार्मिक अनुष्ठानों में या धर्मात्मा, महात्मा व परमात्मा की सेवा में अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का गुप्त रूप से दान करते हैं। जो ऐसा नहीं करते वे परभव में नियम से दुर्गति को प्राप्त करते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

33

''मन की झाड़''

जब तुम्हें गन्दे कपड़े, धूल धूसरित व पसीना से तरबतर शरीर, कचरा व गन्दगी संयुक्त भवन, बासी, बदबूदार भोजन पसन्द नहीं हैं इसलिए उस गन्दगी को तुम दूर कर देते हो अर्थात् वस्त्रों को खूब धोते हो या धुलवाते हो शरीर की शुद्धि हेतु स्नान करते हो, घर की सफाई भी दिन में कई बार करते हो, भोजन भी ताजा ही पसन्द करते हो फिर तुम अपने मन को स्वच्छ रखने का प्रयास क्यों नहीं करते? जानते हो प्रतिक्रमण चित्त की धूल व राग- द्वेष की कीचड़ को साफ करने वाली बुहारी व जल का पोंछा है इसके बिना चित्त की शुद्धि सम्भव ही नहीं है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

34

''शुद्धि भजन की नहीं भोजन की भी''

भोजन और भजन जितनी अधिक विशुद्धि के साथ करोगे उतना ही ज्यादा तन और चेतन को लाभ होगा । भोजन और भजन भीड़ में कभी - कभी ही अच्छा लगता है नित्य तो अकेले में ही स्वादिष्ट व आनंददायक होता हैं। भोजन और भजन दोनों ही प्रभु के चरणों में समर्पित अर्घ्य हैं, अर्घ्य चढ़ाते समय जितना महत्व अर्घ्य की वस्तु का नहीं होता है उससे ज्यादा महत्वपूर्ण होता है उसका भाव । भोजन को यह मानकर ग्रहण करो कि मैं आत्मदेव को अर्घ्य दे रहा हूँ और भजन है परमात्मा को अर्पित अर्घ्य । दोनों शुद्ध, मर्यादित व सत्यता की आधार शिला पर स्थापित हों, तभी उसकी सफलता व सार्थकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

35

''न वह दास, न कोई उसका दास''

विश्व के समस्त साधु और संतों में केवल दिगम्बर संत ही एक ऐसे संत होते हैं, जिनका न तो कोई निश्चित मुकाम होता है और न ही अपना मकान, उनके पास न कोई वीजा होता है और न कोई पास, फिर भी वे पूरे विश्व में कही भी बेरोक - टोक विहार करते हैं। जैसे नदी के बहाव को कोई रोक नहीं सकता यदि रोक दिया तो वह उस स्थान को विध्वंस कर देगी या उस भूमि को आबाद । यदि साधु को भक्ति से रोका तो वहाँ की जनता हरी - भरी, फली - फूली रहेगी, और यदि उपसर्ग करके मार्ग को अवरुद्ध किया है, तो जनता को कोई न कोई प्राकृतिक प्रकोप का सामना करना पड़ेगा । जैन साधु एक ऐसा मसीहा है जिसका अपना कोई दास नहीं होता और न ही वो किसी का दास होता है।

36

''कैसे श्रोता हो आप?''

जो सुने वह श्रोता होता है, जो दूसरे की सुने नहीं केवल बोलता ही चला जाए वह वक्ता होता है, ऐसे वक्ता बहुत हैं जो दिन रात बकते हैं, वक (बगुला) की तरह/ सच्चा श्रोता ही सच्चा श्रावक हो सकता है, मुख्य रूप से श्रोता चार प्रकार के होते हैं।

१. कपास की तरह :- थोड़ा सा धर्मोपदेश सुना कि भावुकता में आकर रोने लगे सभा के बाहर फिर सूखे के सूखे ही ।

२. बालू की तरह :- धर्मोपदेश रूपी जल सिंचन करके भी उसका स्वभाव ज्यों का त्यों ही रहता है, परिवर्तन नहीं आता न वैराग्य होता है तथा न ही जीवन में संयम आता है विद्वान की तरह ही, बालू से भी सारा पानी निकल जाता है।

३. पत्थर की तरह :- जो उपदेशामृत को ग्रहण ही नहीं करते चाहे उसे उपदेश रूपी सागर में डाल दो, वे लोग दुर्जन प्रकृति के ही होते हैं।

४. चिकनी मिट्टी की तरह :- जो श्रोता शनैः शनैः अन्दर ग्रहण करते हैं उसके अंतरंग परिणाम ऋजु और मृदु हो जाते हैं, इसके फलस्वरूप वैराग्य और संयम को लेकर अपनी आत्मा को परमात्मा के साँचे में ढालने में समर्थ हो जाते हैं चौथे नम्बर के ही सच्चे श्रोता हैं, अब स्वयं सोचो और बताओ तुम किस नम्बर के श्रोता हो?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

37

''तो क्या हानि है?''

एक सज्जन पुरुष ने पूछा कि 'यदि शास्त्रों में से प्रथमानुयोग को निकाल दें तो क्या हानि है? उसमें सिवाय कथा - कहानी के है ही क्या? वह भी मात्र अलंकार व साहित्यिक शैली में, उसके द्वारा आत्मा का क्या खाक हित होगा?, मैंने कहा बिना प्रथमानुयोग के अन्य अनुयोग हो ही नहीं सकते जैसे गिनती में एक के बिना अन्य संख्या की प्राप्ति असंभव है, प्रथमानुयोग भी उसी तरह है, उसके बिना आत्मकल्याण की प्राप्ति भी असंभव है। दूसरी बात कैसा रहेगा, तो सुनिये :- जैसे दया और सदाचरण के बिना धर्म, अहिंसा के बिना संयम, घी के बिना दूध, ज्योति के बिना नेत्र, नेत्र के बिना चेहरा, चिकनाई के बिना घी, राजा के बिना राज्य, संत के बिना समाज, ज्ञान के बिना विद्वान, दूल्हा के बिना बारात, कमानी के बिना घड़ी, पहिये के बिना गाड़ी, प्राण के बिना आदमी, ज्ञान - चेतना के बिना जीव आदि की जो हालत होगी वही अवस्था शास्त्रों से प्रथमानुयोग के निकलने पर होगी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

38

''माँ के इर्द - गिर्द है सम्पूर्ण जीवन''

प्रत्येक आदमी का जीवन माँ से ही शुरु होता है और आजीवन वह माँ के इर्द - गिर्द ही घूमता रहता है, चाहे वह पुण्यात्मा बने या परमात्मा, धर्मात्मा बने या अधर्मात्मा "मा" अक्षर रहेगा अवश्य । "मा" अक्षर आदमी के साथ अभिन्न रूप से लगा है, मानव है तब भी मा साथ में है और महात्मा बने तब भी मा है अधमात्मा बने चाहे जघन्यात्मा "मा" अक्षर साथ ही रहेगा । बहिरात्मा में भी मा है, अन्तरात्मा में भी मा है, ज्ञानात्मा में भी मा है, आत्मा में भी मा है तथा अन्त में परमात्मा में भी मा है। बिना मा के कोई भी न तो आत्मा है न कोई परमात्मा । जो माँ की उपेक्षा करते हैं, उन्हे ध्यान रखना चाहिए जो काम मामा नहीं कर सकता, वह काम करती है माँ ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

39

''महल नहीं मरघट है तब तक''

जिस स्थान पर मृत्यु होती है उसे मरघट कहते हैं तथा जहाँ मुर्दों को दफनाया जाता है उसे श्मशान कहते हैं, वे लोग मूर्ख हैं जो श्मशान को ही मरघट कहते हैं, क्योंकि मृत्यु की घटना शमशान में नहीं घर में ही घटित होती है। अतः वह घर मरघट हो जाता है। जब तक कि उस घर में किसी पंच परमेष्ठी के चरण न पड़े किसी संत, साधु, त्यागी व्रती के चरण न पड़ें, उनके आहार (भोजन) आदि वहाँ न हों तब तक वह घर नहीं, मंदिर प्रासाद भी नहीं वह एक मरघट के समान है, उस स्थान पर मातम सा छाया रहता है, मृत्यु के बाद कोई न कोई धार्मिक अनुष्ठान होना ही चाहिए जिससे वह घर मंदिर की उपमा को प्राप्त हो जाये । जब तक घर मरघट की उपमा को प्राप्त किए रहता है, वहाँ पर भूत - प्रेत का वास रहता है अन्यथा घर के लोग ही भूत - प्रेत जैसे प्रतिभासित होते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

40

''क्यों रहेगी वहाँ शान्ति''

जिस परिवार में गर्भवती स्त्रियाँ अश्लील चित्रों से तथा गंदे भड़कीले गानों से युक्त टी.वी देखते हुए भोजन करती हैं, तथा अखबार या मैग्जीन पढ़ते हुए चाय पीती हैं, उस घर में धर्म के संस्कार की तथा सुख - शान्ति की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। जहाँ के बच्चे क्रोधी, युवा मानी तथा वृद्ध लोभी हों, बच्चियाँ जिद्दी, युवतियाँ ईर्ष्यालु, प्रौढ़ाएँ मायाचारिणी छली कपटी हों वृद्ध - वृद्धायें शंकालु प्रवृत्ति के हों तो वहाँ सुख- शान्ति की आशा करना छोड़ ही देना चाहिए, जिस घर से नारी की बुलंद आवाज पड़ोसी के घर तक पहुँच जाए उसमें फिर शांति क्यों आकर रहेगी? अरे ! वहाँ सुख - शान्ति की कविता तो गाई जा सकती है किन्तु वहाँ सुख - शान्ति पाई नहीं जा सकती।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

41

''लड़के की माँ की कुण्डली भी''

आज के युग में सुख शांति से जीना चाहते हो तो बहू के घर आते ही सासु को बहू से मित्रता कर लेनी चाहिए, जिससे बहू तुम्हें अपने सुख की बात बता सके और तुम भी बता सको। मित्र में एक दूसरे के प्रति समर्पण का भाव रहता है। मित्र , अपने मित्र के दुःख को दूर करने के लिए बहुत बड़ा संकट भी अपने ऊपर ले लेता है। यदि सासु बहू के ऊपर अधिकारी बनकर रहेगी तो बहू किसी भी केस में सास को कटघरे में खड़े करने की कोशिश करती रहेगी। जब तक अपने काम में कामयाब नहीं हो सकेगी तब तक तो सासु की, ननद की, पति की सबकी रहेगी, साथ ही उस दिन के भी इंतजार में रहेगी कि उसका पति सबको देश निकाले का फैसला सुना दे जिससे कि घर की राजगद्दी उसे मिल जाये। इसलिए लड़के की शादी के समय लड़के की माँ की भी कुण्डली को लड़की की कुण्डली से एक बार अवश्य मिला लेना चाहिए।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

42

''पुत्रों को अब मित्र बना लो''

जब पिताजी के जूते बेटे के पैरों में आने लगें, तब पिताजी को अपने पुत्र के प्रति सेवक, नौकर या पुत्र जैसा नहीं, मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए। पुत्र के स्वाभिमान की रक्षा अपने मित्र के स्वाभिमान की तरह करना चाहिए। काश! तुम ऐसा कर सके तो पुत्र तुम्हारे स्वाभिमान की रक्षा करेगा। किन्तु (वही पुत्र) जिसके प्रति तुमने अपने कर्त्तव्यों को पूरा निभाया है, अर्थात् उसे सम्पत्ति ही नहीं, धर्म के संस्कार भी दिये हैं, केवल मकान, दुकान, जमीन, जायदाद ही नहीं सम्यक् ज्ञान, सच्ची आस्था, श्रावकोचित क्रियायें, यम, नियम, व्रत, संयम भी दिया है, उसके लिए निस्वार्थ भावना से संघर्ष का सामना किया है, तो आप यकीन करिये आप का बेटा आपके साथ स्वप्न में भी बगावत नहीं करेगा।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

43

''यह कोई नई बात थोड़े ही है''

यदि आपको पंच नमस्कार मंत्र की जाप लगाते - लगाते आज तक सुख शांति नहीं मिली है, तो आप एक काम करना प्रारम्भ कर दीजिए, आप को अवश्य ही सुख शांति मिलेगी। वह काम है - जब भी कोई घटना घटित हो अच्छी या बुरी, आप मन में कहें, यह तो होना ही था, सो हो गया,अब इस सम्बन्ध में विकल्प करना व्यर्थ है। कोई भी शुभ या अशुभ समस्यायें आयें, आप कहो - दुनियाँ का यही तो स्वभाव है, यह कोई नई बात थोड़े ही है। यदि आपके साथ कोई भी घटना या दुर्घटना घटित हो, या कोई भी महान आश्चर्य घटित हो जावे तो आप अन्दर से एक ही बात कहें, यह तो अनादि काल से हो रहा है, यह कोई नई बात थोड़े ही है, इस पर हर्ष - विषाद करना व्यर्थ है। इष्ट संयोग - अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग - अनिष्ट वियोग में भी उसी धारणा को दुहरायें यही तो संसार का स्वभाव है इसमें राग - द्वेष या प्रमाद - शोक करना मूर्खता ही है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

44

''समाचार पत्रों की अहमियत''

आजकल के समाचार पत्रों में सम्+ आचार तो कहीं - कहीं (क्वचित्/ कदाचित्) ही दिख पाता है, जैसे कि कहीं भूल से छप गया हो अथवा जगह खाली बची हो तो कहीं, चलो इसे ही डाल देते हैं और कदाचार मुख्य पृष्ठों पर बड़े - बड़े अक्षरों में छपा होता है, कई बार तो बहुरंगों के साथ - साथ चित्र भी दे दिये जाते हैं। क्या वास्तव में यही है समाचार पत्रों की "अहमियत" क्या इसी उद्देश्य को लेकर समाचार पत्रों को चालू किया गया था । समाचार पत्रों में सत्य के साथ - साथ सम्यक् सदाचार भी होना चाहिए तभी समाचार पत्रों की सार्थकता है। यदि समाचार पत्रों में संतों के उपदेश, सच्ची मानवता का उदाहरण, महापुरुषों के संस्मरण तथा सत्य के लिए संघर्षशील मनुष्यों के अंतरंग के मनोभावों को, परोपकार, मैत्री, क्षमा, प्रेम - वात्सल्य व भाई चारे के समाचारों को छापना प्रारम्भ कर दिया जाये तो इन अनर्थकारी घटनाओं में कम से कम ६० प्रतिशत कमी आ सकती है और तब वे सम्वाददाता, सम्पादक, प्रतिनिधि भी मानवता के सच्चे पुजारी, संस्कृति के संरक्षक, धर्म सेवक व निस्वार्थ उपकारक व तपस्वी कहलायेंगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

45

''किसी को बंधन में डालना उपासना नहीं''

किसी व्यक्ति ने कहा :- आप जैन लोग सूर्य और गाय को नहीं मानते, जबकि हम लोग गाय और सूर्य को देवता मानते हैं। मैंने कहा ठीक है ! तुम गाय और सूर्य को मानते हो किन्तु तुम्हारा मानना कोई सार्थक नहीं है, लोग सूर्य को पानी देकर या गाय को खूँटे से बाँधकर कौन सी उपासना कर लेते हैं? जैन बंधु भी सूर्य को, गाय को मानते हैं किन्तु उनका मानना भिन्न है, ये सूर्य के अस्त होने पर और गाय के गले में बंधन डल जाने पर भोजन भी नहीं करते, यद्यपि वे सूर्य के विमान में स्थित जिन बिम्बों की पूजा भी करते हैं, किन्तु सूर्य की नहीं, और गौ शब्द को तो वे अपनी जिनवाणी का भी पर्यायवाची मानते हैं और जिनवाणी को सदैव हृदय में धारण करते हैं, क्या उनका इस प्रकार मानना सम्यक् नहीं है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

46

“ चाहें आम और बोवें बबूल”

तुम अपने पुत्रों से अपने प्रति कैसा व्यवहार चाहते हो? अच्छा या बुरा? आप चाहते हो कि आपके बेटे आप से सम्मान से वार्तालाप करें, आपको अपने मन की सभी बात बतायें, आपको प्रेम के साथ मधुर संभाषण करते हुए पंखे से हवा करते - करते प्रेम से भोजन करायें, आपसे आपके सुख - दुःख की बातें दिन में दो बार (सुबह और शाम) पूछें, अस्वस्थ होने पर आपकी सेवा अपने हाथों से स्वयं करें नौकरों से नहीं करायें तथा हाथ पकड़ कर तीर्थ वंदना करायें, गाड़ी में बिठाकर नित्य देव दर्शन करायें, तुम्हारी मनोकामनानुसार दान दिया करें, तो बस आप हमारी एक बात मान लें, ये सभी काम आप आज ही से अपने माता - पिता के साथ शुरू कर दें और वह भी बिना किसी स्वार्थ व शर्त के तथा मन में पूरा विश्वास रखें कि आपके पुत्र भी आपको वही सम्मान व वही सद्व्यवहार देंगे जैसा उन्होंने अपने माता - पिता को देते हुए देखा है या पड़ोसियों के मुँह से सुना है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

47

“आपकी सेवा में समर्पित अर्घ”

जिस पिता ने कई वर्षों नंगे पैर रहकर, एक जोड़ी कपड़ों से ही काम चलाकर, एक बार भोजन कर तुम्हें पढ़ाया है, प्रभु परमात्मा से तुम्हारे लिए योग्य बनने की प्रार्थना की है, भगवान से तुम्हारे लिए सब कुछ माँगा है, और तुम्हें ही अपनी निधि - रत्न माना है। उस समय भी खर्च के लिए अपने पेट को काट कर, रूखी - सूखी रोटी खाकर, तुम्हें दिया है जब तुम कुछ नहीं करते थे पिता के सामने हाथ फैलाते थे। किन्तु आज जब तुम हजारों लाखों रूपये कमाने लगे हो, तब तुम अपने मन में ईमानदारी के साथ सोचकर बताओ कि क्या तुम्हें सब कुछ समर्पण करके माता - पिता की सेवा नहीं करनी चाहिए? उन नंगे पैरों की सेवा करके अपने आँसुओं को बहाकर उन्हें प्रक्षालित नहीं करना चाहिए? क्या अपने पिताजी की हथेली पर अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा रखकर यह प्रार्थना नहीं करनी चाहिए कि हे पूज्य पिताजी ! वैसे सब कुछ आपका ही है आपका ही था और रहेगा, आपकी सेवा में यह मेरा तुच्छ अर्घ्य समर्पित है, इसे स्वीकार करो और हम भी आपके थे और सदैव आपके ही रहेंगे । केवल आपकी धन - सम्पत्ति लेने के लिए ही नहीं अपितु आपके साधु तुल्य चरणों की सेवा करने के लिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

48

''जीना है तो जीना बनकर''

जीना (सीढ़ियाँ) चढ़ने के काम आती हैं, उसके बिना ऊपर की मंजिल तक पहुँचना कठिन ही नहीं असंभव है, किन्तु एक बात जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि जीना उतरने के भी काम आता है, अर्थात् जिस जीने से आप जितना ऊँचे चढ़ सकते हो उसी जीने से आप उतने नीचे भी उतर सकते हो। जीना उभय शक्ति से युक्त होता है। इसी तरह मानव पर्याय भी जीने के समान है, उसके द्वारा व्यक्ति चढ़कर सोलहवें स्वर्ग तक ही नहीं सर्वार्थसिद्धि तक भी जा सकता है। और यदि कुशल खिलाड़ी हो तो मोक्ष भी असंभव नहीं है इसीलिए तो यह मनुष्य भव रूपी सीढ़ी सभी पर्यायों की सीढ़ी से श्रेष्ठ है, किन्तु यह भी कभी मत भूलना कि यदि आप सीढ़ी से नीचे उतर गये तो सातवें नरक ही नहीं निगोद भी जा सकते हैं, अतः चढ़ने के लिए इस सीढ़ी का प्रयोग करो तभी आपकी बुद्धिमानी सिद्ध हो सकेगी ।

49

''इनकी कभी उपेक्षा मत करो''

इनकी कभी उपेक्षा मत करो-

भक्ति के समय भगवान की, ध्यान के समय ज्ञान की, युद्ध क्षेत्र में शत्रु की, शिक्षा ग्रहण करते समय गुरु की, संयम के साथ वैराग्य की, तप के समय संयम की, गर्भवती व असहाय स्त्री की, ज्ञान पिपासु शिष्यों की, आज्ञाकारी पुत्रों की, रोग के समय औषधि की, संकट के समय धर्म की, भयभीत अवस्था में धैर्य की, सच्चे हितैषी व परोपकारी मित्रों की, सच्चे श्रद्धालु भक्तों की, सरल वृत्ति वाले आश्रितों की, दीन - हीन अनाथों की, रोग ग्रसित मित्रों की, धर्म से विचलित साधर्मी बंधुओं की कभी उपेक्षा मत करो अन्यथा इससे कोई लाभ नहीं मिलेगा, हो सकता है, हानि और परेशानी ही भुगतनी पड़े ।

50

''अवसर मत चूको''

इन अवसरों में प्रमादी मत बनो-

रोग होने पर औषधि का सेवन करने में, सद्गुरु का पावन सानिध्य मिल जाने पर विद्या अध्ययन करने में, धन होने पर सत्पात्रों को दान देने में तथा विवाह होने पर चंचल व कुल्टा स्त्री के प्रति, समर्पित शिष्य के अविनयी होने पर, समाधि साधक क्षपक की संयम साधना में शिथिलता आ जाने पर, व्यवसाय में लाभ प्राप्ति का अवसर आ जाने पर, खेत में बीज बोने या फसल काटने का अमूल्य अवसर आ जाने पर, सुयोग्य संतान को सुसंस्कार देने में, राजा के कुपित होने पर, समीप में अग्नि प्रज्वलित होने पर, सफलता की योग्यता से युक्त होने पर परीक्षा देते समय, गुणी व परम पूज्य महापुरुषों की सेवा का अमूल्य अवसर प्राप्त होने पर कभी प्रमादी नहीं बनना चाहिए। प्रमादी बन जाने पर इससे कोई लाभ मिलने वाला नहीं है, हो सकता है, हानि ही हानि उठानी पड़े।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

51

''संकल्प में दृढ़ता''

एक किसान ने अपनी फसल की सिंचाई हेतु अपने खेत में ४ - ४ हाथ गहरे सैकड़ों कुएँ खोदे, किन्तु किसी भी कुएँ में पानी नहीं निकला हर वर्ष फसल सूख जाती, किसी सयाने पुरुष ने उसे समझाया कि, एक ही गहरा गड्ढा क्यों नहीं खोद लेते, उस किसान ने एक गहरा कुँआ खोदा तो पानी निकल आया, फसल हरी - भरी हो गई और वह किसान मालामाल हो गया। इसी तरह मानव भी जीवन में अनेकों संकल्प लेता है, पुनः हताश - निराश होकर उन्हें तोड़ देता है इसीलिए वह आत्मानंद के स्त्रोत को नहीं पा सका। आत्म गुणों की फसल सूख रही है, यदि एक ही दृढ़ संकल्प करलें कि समस्त कर्मों का क्षय करके ही रहूँगा तो क्या वे अनन्त गुण के कोश / स्रोत को प्राप्त नहीं होंगे? अवश्य ही अनन्त सुख के / मुक्ति सुन्दरी के अधिकारी होंगे। आवश्यकता है एक सुदृढ़तम संकल्प की।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

52

''जैनों की उदारता''

जैनों की उदारता तो देखो कि राम का नाम लेते समय श्री ऋषभ से महावीर तक चौबीस तीर्थंकर को नमस्कार कर लेते हैं, और आगम शब्द के साथ भी आदिनाथ से महावीर तक का स्मरण कर लेते हैं, जितना राम और आगम को जैन बंधु मानते हैं, क्या हिन्दू इन शब्दों की कसौटी पर भी खरे उतरते हैं, क्योंकि सच्चा हिन्दू वही है जो हिंसा का दूर से ही परित्याग कर देता है, क्या जैन श्रमण के समान कोई और भी श्रमण है, जो अहिंसा का उच्च कोटि तक पालन करता है? किन्तु कुछ संकीर्ण विचारधारा वाले लोग यथार्थ को न समझकर आपस में ही लड़ने - झगड़ने में लगे हैं, कुछ धर्माचार्य, मठाधीश, संत - महात्मा जनता में भेद भाव की दीवाल खींचकर जनता को तोड़ना व लड़वाना चाहते हैं, क्योंकि इसके बिना उनकी दाल नहीं गल सकेगी।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

53

''सत्य और सत्यार्थी''

सत्य और सत्यवादी शूली तक पहुँच सकते हैं, पहुँचे भी हैं किन्तु सत्य और सत्यार्थी को कभी शूली/ फाँसी लगती नहीं है तथा असत्य और असत्यार्थी सिंहासन तक पहुँच सकते हैं, किन्तु सिंहासन पर सुख पूर्वक नहीं बैठ सकते। यदि असत्य सिंहासन पर बैठ जाये या सिंहासन पर बैठ कर असत्य का सहारा ले तो वह सिंहासन सहित रसातल को चला जाता है। असत्यवादी राजा वसु, सत्यघोष, रावण, कंस की तरह दुर्गति/ अधोलोक को ही प्राप्त होते हैं। सत्य चाहे सिंहासन के पास हो या शूली के पास किन्तु वह सत्य - सत्य ही है, असत्य चाहे सिंहासन के पास हो या शूली के पास वह असत्य - असत्य ही रहेगा उसे तीन काल में भी सत्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। सोना अग्नि में भी सोना है, कागज की पुड़िया में रखा लोहे का टुकड़ा लोहा ही है, रत्न अलमारी में हो या नाली में पर वह रत्न ही कहलायेगा, पर काँच का टुकड़ा भले ही किसी आभूषण में लगाया जाए वह काँच ही है उसमें हीरे के लक्षण नहीं आ सकते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

54

''धार्मिक नहीं धर्मात्मा बनो''

धार्मिक और धर्मात्मा में भी अंतर है। धार्मिक वह होता है, जो शरीर से धर्म की क्रिया करके, वचन से धर्म शब्दों को बोलकर तथा धर्म के लिए अपना कुछ धन खर्च कर धार्मिकता का प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु धर्मात्मा वह होता है, जिसकी आत्मा में धर्म का वास हो, वह कहीं भी रहेगा धर्म उसकी आत्मा में सदैव विद्यमान रहेगा । धार्मिक केवल धर्म स्थान पर ही धार्मिक दिखता है नट की तरह भेष धारण करके । धर्मात्मा में धर्म वैसे ही होता है जैसे घी में चिकनाई, अग्नि में उष्णता, जल में शीतलता, शक्कर में मिठास, नमक में खारापन, नीम में कड़वापन, मिर्ची में चरपराहट, व नींबू में खट्टापन तथा सिद्धों में अनंत सुख, जीवन में ज्ञान - दर्शन ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

55

'' इतना ख्याल और''

दाल या सब्जी न बिगड़ जाये, खीर, भात, हलुआ न बिगड़ जाये, चाशनी, कसार, आटा न बिगड़ जाये, बड़ा, पापड़, अचार, मुरब्बा न बिगड़ जाये, हाथ की मेंहदी या चेहरे का मेकअप, साड़ी की क्रीज न बिगड़ जाये, बालों की सेटिंग या वस्त्रों की मैंचिग न बिगड़ जाये, अथवा कोई आभूषण या उपकरण न टूट जाये, कोई डिब्बा, गिलास, काँच या चीनी मिट्टी के उपकरण टूट न जायें या मिट्टी के गमले फूट न जायें या चप्पल - जूते टूट न जायें या कोई वस्तु जमीन पर न गिर जाये, इन सब बातों का महिलाएँ बहुत ध्यान रखती हैं, यदि वे इतना ख्याल और रखलें कि हमारे परिणाम न बिगड़ जायें, हमारे नियम न टूट जायें, हमारे व्रत न टूट जायें, हमारे धर्म के भाव न गिर जायें तो उनका भी कल्याण हो जायेगा । अवश्य ही वे आत्म कल्याण व सुख - शान्ति प्राप्त कर लेंगी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

56

''ना रति वह नारकी''

नारकी वह है जो प्रेम रहित है, ना रति इति नारकी। जहाँ पर रहने वाले जीवों में परस्पर एक दूसरे के प्रति रंच मात्र भी प्रेम - रति भाव न हो वह नारकी है। जो प्रेम भाव से रहित है, क्रोध, बैर, छल, मान, लोभ व विषयाभिलाषा से सहित है, वह नारकी वत् ही है, वह या तो नरक से निकल कर आया है या नरक में जाने वाला है। ऐसे व्यक्तियों की भाषा भी क्रूर और अत्यंत कठोर होती है वह कहता है 'मैं तुझे मार दूँगा, काट दूँगा, चीर दूँगा, तेरी बोटी - बोटी काटूँगा, तेरा चूरा कर दूँगा, तुझे मसल दूँगा, तुझे अग्नि में झोंक दूँगा, तेरे तिल - तिल जैसे टुकड़े कर दूँगा, तुझे कच्चा खा जाऊँगा, तेरा खून पी जाऊँगा, तुझे जीवित नहीं छोडूँगा, मै सबको मार दूँगा, सबको मारकर ही रहूँगा ऐसी भाषा बोलने वाला निर्दयी, क्रूर परिणामी, बैर को न छोड़ने वाला भूतकाल का वर्तमान काल या भविष्य काल का नारकी ही है, ऐसे व्यक्तियों की संगति से सज्जन पुरुषों को सदैव दूर ही रहना चाहिए।"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

57

''अपने घर को स्वर्ग कैसे बनायें?''

प्रत्येक व्यक्ति अपने घर को स्वर्ग बनाना चाहता है, किन्तु स्वयं स्वर्गीय नहीं होना चाहता, स्वर्गीय आनंद तो चाहता है, किन्तु स्वर्गीय होना नहीं चाहता। स्वर्गीय होने का आशय है स्वर्गवासी अथवा मृत्यु को स्वीकारना, दूसरा स्वर्गीय का अर्थ है स्वर्ग में रहने वाले देवों जैसी प्रवृत्ति करना। जब तक तुम्हारा स्वभाव देवों जैसा नम्र, सरल - सहज, प्रभु भक्ति में अनुरक्त, धर्म ध्यान मे संलग्न, चारों विकथाओं से रहित, कषायों की मंदता से युक्त, परिणामों की निर्मलता से युक्त, परिग्रह से अनासक्त नहीं होगा, तब तक तुम अपने घर को स्वर्ग जैसा नहीं बना सकते। स्वर्ग (सु - अरग) का दूसरा अर्थ भी जानते हो? नहीं ! तो सुनो 'सु' माने सुन्दर (तन से ही नहीं मन से भी) 'अ' माने अमृत भोगी, अजर तथा 'र' माने रमणशील प्रेम युक्त तथा 'ग' का अर्थ है गर्व और गम से रहित गमक यानी ज्ञानी। ऐसे बनो तो तुम देव तुल्य कहलाओगे और तुम्हारा घर स्वर्ग का विमान।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

58

''सिद्धालय के समाचार''

जब तुम घर से बाहर जाते हो तो अपना मोबाईल नम्बर देकर जाते हो तथा घर का या अड़ोस का नम्बर साथ लेकर जाते हो और सुबह शाम अपनों की खबर लेते रहते हो और अपनी सूचना घर सुबह - शाम भेजते रहते हो, अभी भी तुम अपने घर के बाहर हो, तुम परदेशी हो, तुम्हारा घर सिद्धालय है, तुम्हारी कान्ता तो मुक्ति सुंदरी है जो तुम्हारी प्रतीक्षारत है। सुबह - शाम एकान्त में बैठकर चित्त के मोबाइल से उसे चेतन के समाचार दे दिया करो, उसके समाचार ध्यान रूपी दूरभाष से ले लिया करो यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुम चिरकाल तक परदेश में ही भटकते रहोगे, अनेक रूप धारण करते रहोगे। यदि अपने घर पहुँचने की आकांक्षा मन में हो तो आज ही संकल्प कर लो कि मैं अब नित्य सुबह - शाम सामायिक के बहाने सिद्धालय के समाचार लूँगा व अपने समाचार भेजता रहूँगा।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

59

''स्वच्छता की आवश्यकता''

जब आपको घर की, तन की, वसन (वस्त्रों) की गन्दगी बिल्कुल पसंद नहीं है, तब भी अपने घर पर गन्दगी का ढ़ेर क्यों लगाते हो, अपने मन में इतनी गन्दगी क्यों भर कर बैठे हो? इसे निकाल क्यों नहीं देते? घर की सफाई तो दिन में तीन - चार बार करते हों, घर को धोते है, पोंछा लगाते हो, वाइपर महीने भर भी नहीं चल पाता कि घिस - घिस कर टूट जाता है, वस्त्र भी धुल - धुल कर फट जाते हैं, फिर मन की सफाई क्यों नहीं करते हो, मन रूपी घर में भी प्रतिक्रमण रूपी झाड़ू लगाना जरूरी है, प्रत्याख्यान रूपी पोंछा और सामायिक रूपी वाइपर से सफाई भी आवश्यक है, यदि ज्यादा गन्दगी हो तो त्याग रूपी फिनाइल से पोंछा लगाना पड़ेगा, नित्य सुबह - शाम यदि तत्व चिंतन व सामायिक का पोंछा लगता रहेगा तो कभी कर्म रूपी धूल जम न सकेगी।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

60

''क्या तुम ये नहीं मानते?''

संसार में दोष ग्राही व्यक्ति भी आवश्यक हैं। यदि संसार में दोष - ग्राही, छिद्रान्वेशी नहीं रहेंगे तो तुम और तुम्हारी कृति पूर्ण निर्दोष कैसे बन सकेगी? जितनी आवश्यकता हंस, मयूर, तोता, कोयल,बत्तख, कबूतर, सारस, मैंना व नीलकण्ठ की है उतनी ही चील, कौआ, बाज, गिद्ध की भी है, मानव हित में जितने सहयोगी हिरण, गाय हाथी, घोड़ा, बैल, गधा, ऊँट आदि है। उतने ही उपयोगी कुत्ता, सूअर, चूहे, बिल्ली, साँप,नेवला, शेर, चीता, सियार, लोमड़ी भी हैं, जितनी पहाड़ की उपयोगिता है, उतनी ही नदी, सागर, तालाब व झील की भी है। क्या तुम ये नहीं मानते कि भवन में पूजा गृह, रसोईगृह, अध्ययन कक्ष, अतिथिकक्ष, शयन कक्ष आवश्यक है, उससे भी कहीं ज्यादा आवश्यक है स्नानघर, शौचालय एवं नालियाँ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

61

''सफलता का मार्ग''

टमाटर का पौधा एक सप्ताह में उत्पन्न होकर एक माह बाद फल देना प्रारम्भ कर देता है, परन्तु आम का पौधा लगभग पाँच वर्ष बाद फल देना प्रारम्भ करता है, तुच्छ पुरुषार्थ का फल तुच्छ व शीघ्र मिल सकता है, किन्तु महान फल के वांछक को महान पुरुषार्थ करना आवश्यक है। झोंपड़ी तीन घंटे में बन सकती है किन्तु महल तीन शताब्दी में भी पूरा नहीं हो पाता, झोंपड़ी की अधिकतम उम्र २, ४ माह ही है जबकि महल की आयु हजारों वर्ष है। इससे आप भी अपने जीवन के लक्ष्य और सफलता के बारे में विचार कर निश्चिंत हो जाओ । आप जितनी बड़ी सफलता चाहते हैं, उसके लिए उतना ही अधिक समय व परिश्रम अपेक्षित है। क्या आप नहीं जानते शक्कर के चार कणों से एक चम्मच पानी ही मीठा हो सकता है पूरी टंकी या ड्रम नहीं, उसी प्रकार तुम्हारे अल्प पुण्य कार्य से क्षण भर ही सुख मिल सकता है शाश्वत सुख नहीं, शाश्वत सुख पाने हेतु कठिन तप भी अनिवार्य है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

62

''जीवन रूपी गाड़ी''

यदि आपका वाहन स्टार्ट नहीं हो रहा हो, तो तुम उसे स्टार्ट कराने हेतु किसी व्यक्ति का सहारा लेते हो जिससे वह धक्का देकर स्टार्ट करा दे, एक से काम नहीं चलता तो समूह का या किसी हैवी गाड़ी का सहारा लेना पड़ता हैं। किन्तु वह वाहन स्टार्ट तो तभी होगा न, जब उसमें डीजल या पैट्रोल आदि हो, वाहन बिगड़ा हुआ न हो, मशीनरी खराब न हो, अन्यथा वह वाहन कितने भी धक्के लगाने पर स्टार्ट नहीं हो सकेगा । इसी प्रकार अपने जीवन रूपी वाहन को स्टार्ट कराने के लिए त्यागी व्रती जैसे अच्छे पुरुषों के द्वारा उसे धक्के की आवश्यकता होती है, कदाचित् गुरु रूपी हैवी वाहन की भी जरूरत पड़ती है, तभी जीवन रूपी गाड़ी स्टार्ट हो सकती है, किन्तु वह जीवन रूपी गाड़ी तभी स्टार्ट हो सकेगी जब उसमें पुण्य रूपी डीजल या पैट्रोल हो, सदाचार रूपी मोबिऑयल, संयम रूपी ब्रेक सही हो, सम्यक्त्व व सम्यक्ज्ञान के दोनों पहिए व वैराग्य रूपी कमानी ठीक हो अन्यथा गुरू तुम्हारे जीवन की गाड़ी को स्टार्ट कैसे कर सकेंगे? दूसरी बात यह है कि गुरू एक या दो बार धक्का ही दे सकते हैं। जिन्दगी भर बैल बन खींच तो नहीं सकते ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

63

''जीवन की असलियत''

जब तक किसी का स्वार्थ सिद्ध हो रहा है या स्वार्थ की कल्पना है, तभी तक वह उसे अपना इष्ट मानता है, उससे प्रीति करता है। किन्तु जैसे ही उसे यह ज्ञात हो जाए कि उससे मेरे स्वार्थ की सिद्धि नहीं होती है, तो वह तुरन्त ही उसे छोड़ देता है। जैसे - सूखे तालाब को हंस या सारस, सूखे वृक्ष को पक्षी, दूध छूट जाने पर गाय को बछड़ा, निर्धन को वेश्या, वृद्ध माता - पिता को पुत्र, सत्ता से रहित स्वामी को सेवक, सत्य से रहित राजा को जनता, संयम से रहित साधक को भक्त गण, तप व ध्यान से रहित योगी को ऋद्धि - सिद्धियाँ, योग से रहित केवली को कर्म छोड़ देते हैं। तुम जिनसे प्रेम करते हो, क्या तुम्हारा उनसे कोई स्वार्थ नहीं है? यदि कहो कि नहीं है, तो प्रत्येक प्राणी मात्र के प्रति स्नेह क्यों नहीं करते? इससे सिद्ध है कि तुम भी स्वार्थ के वशीभूत होकर प्रेम करते हो । जिससे जितना ज्यादा स्वार्थ है, उससे उतना ही ज्यादा प्रेम है। क्या यही नहीं है तुम्हारे जीवन की असलियत ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

64

''चाहत''

जिस प्रकार लोक में देखा जाता है, कि छाया वही चाहता है जो धूप में तपा हो, पानी वही चाहता है जो प्यासा हो, भोजन वही माँगता है जो भूखा हो, औषधि वही सेवन करता है जो रोगी है, शीतल पदार्थों की वांछा भी तो वही करेगा जिसके अंतस में गर्मी भरी है, ऊष्ण पदार्थ व उपकरण वही चाहता है जो शीत की बाधा से पीड़ित है, सुख वही चाहता है जो दुःखी है। अनन्त ज्ञान वही चाहता है जिसे अपनी अज्ञानता का बोध हो चुका है अनंत शक्ति वही चाहेगा जिसे अपनी हीनता का सच्चा बोध हो चुका है, इसी प्रकार जिनेन्द्र भक्ति वही करना चाहता है जिसे संसार से पार होना है, दीर्घ संसारी कभी सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के निकट नहीं आ सकता धर्म का अंतरंग से पालन भी नहीं कर सकता, धर्म का सेवन वही कर सकता है जिसके लिए संसार अल्प रह गया है। अनाथ ही सहारा देखता है अंधकार में भटका हुआ प्रकाश का अन्वेषक हो सकता है। आत्मा के शाश्वत सुख आदि स्वभावों को वही प्राप्त करता है जो संसार के समस्त भौतिक वैभवों से ऊब चुका हो । अन्यथा स्व - पर की आत्मा को ठगने वाले तो गली - गली में मिल जायेंगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

65

''क्या फर्क पड़ता है''

संसारी प्राणी में कुछ न कुछ पाने, बनने और होने का सदैव भूत सवार रहता है। व्यक्ति बहुत कुछ पाकर, बहुत कुछ खोकर, बहुत कुछ होकर, बहुत कुछ बनकर भी यह होने का, पाने का, बनने का विचार जीवन पर्यन्त करता है, यही विचार ऐसा भस्म व्याधि रोग है कि जीवन समाप्त हो जाता है, इच्छायें, वांछायें, कामनायें समाप्त नहीं होती । तुमने कभी सोचा है कि तुम्हें यह मिल गया तो क्या हुआ? यदि वह भी मिल जाता तो क्या हो जाता? यह खा लिया तो क्या हुआ यदि वह भी खा लेते तो क्या फर्क पड़ जाता? वह पद भी मिल जाता तो भी क्या होता? नहीं भी मिला तो क्या फर्क पड़ गया । इतना जी लिए तो क्या हुआ, उतना नहीं जी पाये तो क्या हुआ? यहाँ जन्मे या वहाँ जन्मे क्या फर्क पड़ता है? तुम आत्म तत्त्व का जब तक यथार्थ चिंतन नहीं करोगे तब तक क्या कभी सुख - शान्ति को पा सकोगे । सुख - शान्ति तो दूर सुख - शान्ति का मार्ग तक भी प्राप्त नहीं हो सकेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

66

''इच्छाओं को उत्पन्न ही मत होने दो''

जिन इच्छाओं की पूर्ति संभव है उनकी पूर्ति के लिए व्यक्ति पुरुषार्थ करता है, किन्तु जिनकी प्राप्ति संभव ही न हो तो उनके लिए क्या पुरुषार्थ करेगा ? जिसकी इच्छाऐं वृद्धि को प्राप्त हों, समस्यायें बढ़ती ही जावें तब पूर्ति क्यों करना? तब उन इच्छाओं को त्याग ही देना चाहिए, यही बुद्धिमानी है। ज्ञानी पुरुष अनर्थकारी इच्छाओं को कभी पूर्ण नहीं करते, अपितु उन्हें दबाते हैं, त्यागते हैं, उन्हे नष्ट करते हैं, क्योंकि अनर्थकारी इच्छाओं को तुम नहीं दबाओगे तो वे तुम्हें दबा लेगी, तुम उन्हें नष्ट नहीं करोगे तो वे तुम्हें नष्ट कर देगी । इच्छाओं का जन्म न होना ही निराकुलता है और वह शाश्वत निराकुलता ही सच्चा सुख है। आकुलता को मिटाने हेतु जो बाह्य पुरुषार्थ होता है। वह अनेक आकुलताओं को पैदा करने वाला होता है। अनर्थकारी एक इच्छा की पूर्ति से हजारों लाखों इच्छायें पैदा हो जाती हैं। फिर वे और भयंकर उपद्रव करती हैं। अतः इच्छाओं को सीमित तो करो साथ ही उन्हें नष्ट भी करो या उत्पन्न ही मत होने दो । यही कल्याण का मार्ग है।

67

''महत्वपूर्ण''

मोही जीव अज्ञान व मिथ्यात्व के कारण जिन पदार्थों में सुख की धारणा बना चुका है, उन्हीं की निरन्तर चाह करता है उन्हीं को जीवन में सर्वोत्कृष्ट मानता है उन्हीं का न्याय व अन्याय मार्ग से अर्जन करता है, उन्हीं की तुलना व समीक्षा करता है, उन्हीं के कम होने से कमी महसूस करता है, तो अधिकता होने पर अहंकार से भर जाता है। व्यक्ति जिस-जिस वस्तु को महत्वपूर्ण मानता है उसकी तुलना अवश्य करता है। यदि तुम्हारे घर में चार टूटे मूड़े पड़े हैं और पड़ौसी के घर में ८ मूड़े, ५० झाड़ू, १० पलंग टूटे पड़े हैं तो तुम्हें दीनता महसूस नहीं होती, बल्कि पड़ौसी का कच्चा मकान और तुम्हारा पक्का मकान तुम्हें अहंकार से भर देता है। जब तुम पर पदार्थों को निर्मूल्य समझने या मानने लगोगे तब पद या पदार्थों की भूख तुम्हें न रहेगी, उनके होने न होने से सुखी - दुःखी भी न हो सकोगे । ज्ञानी व्यक्ति के लिए स्वात्मा ही सर्वोत्कृष्ट व सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। अतः वह पर पदार्थ व पदों से कभी प्रभावित नहीं होता ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

68

''खुद - आ''

अरे भले आदमी ! तू खुदा को बाहर पर्वत, नदी, तालाब, सागर, गिरि, गुफा व कंदराओं में क्यों खोजता है, खुदा वहाँ बैठा है क्या? जो तुझे मिल जायेगा, क्योंकि वहाँ तो खुदा है ही नहीं । खुदा तो खुद है, अपनी खुदी को देख, खुद को खुदी से एक बार जुदा करके तो देख, तब तू खुद कहेगा कि खुदा हो गया हूँ मैं । जो खुद में खुदा नहीं देख सका उसे कहीं खुदा नहीं दिखा, तू एक बार सम्पूर्ण रूप से खुद में आ जा, खुद में आने का नाम ही खुदा बनने का काम है। खुद - आ तो हो जायेगा खुदा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

69

''खोजो मत खोदो''

जब तक दृष्टि बाहर की ओर या पर्याय की ओर रहती है तभी तक संसार का दावानल व्यक्ति को, प्राणियों को व्यथित कर सकता है। किन्तु जैसे ही दृष्टि अंतरंग में जाती है, द्रव्य की ओर जाती है, तब बाहर का कोलाहल, दावानल सब कुछ शान्त हो जाता है, जब तक शरीर को नित्य और आत्मा को अनित्य मानोगे तब तक संसार के ताप से तुम्हें कोई नहीं बचा सकता, किन्तु जैसे ही "आत्मा नित्य और शरीर आदि समस्त पर पदार्थ अनित्य हैं, पर हैं, और रहेंगे " यह विचार आत्म - प्रदेशों में आ जाता है तब उसी समय से ही सुख - शान्ति का द्वार जीवन में खुलना प्रारम्भ हो जाता है। तुम्हें आत्म - सुख चाहिए तो कर्मों की परतों को तोड़ कर, खोदकर आत्मा में ही पा - लो, बाहर खोजने की मूर्खता मत करो । कस्तूरी मृग की भाँति बाहर खोजने से आत्म निधि रूपी कस्तूरी कदापि नहीं पा सकोगे । अतः अब खोजो मत अंतरंग में खोदो, कर्मों को खो दो, खुद को परखो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

70

''अभी कन्या क्वारी क्यों?''

एक बार परम पूज्य आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंद जी महाराज ने बताया, संसार में एक कन्या है जो अभी तक कुँवारी है, वह विवाह करने की इच्छा से स्वयंवर मण्डप में वरमाला लिए खड़ी है, जिसके गले में वरमाला डालना चाहती है, वे उसकी ओर देखना तक पसंद नहीं करते, वे महानुभाव उसके बारे में सोचना भी पाप समझते हैं उस कन्या का कभी स्मरण तक नहीं करते, उससे बचकर चलते हैं, उसकी परछाई तक उन्हें छू नहीं सकती, दूसरी ओर वे लोग हैं जो उस कन्या के पीछे पड़े हैं निरन्तर उसे प्राप्त करने हेतु उद्यमशील हैं, किन्तु वह कन्या उन्हें स्वप्न में भी नहीं चाहती, उन व्यक्तियों को वरण करना तो दूर वह उन्हें देखना भी नहीं चाहती । इसलिए वह आज तक ज्यों का त्यों (अनादि काल से आज तक) कुँवारी है। क्या आप जानते हो, क्या नाम है उस कन्या का, कौन है वह अनिंद्य सुन्दरी त्रिभुवन मोहनी? नहीं जानते तो सुनो - वह कन्या है - सुकीर्ति । जिसे यश, ख्याति,नामवरी आदि नामों से जाना जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

71

''तुम भी बनो ऐसे योद्धा''

युद्ध क्षेत्र में युद्धार्थ पहुँचे योद्धा के लिए कवच, ढाल, तलवार, धनुषबाण व ब्रह्मास्त्र आदि शक्तियों का होना आवश्यक है, उसी प्रकार मोक्ष मार्गी के लिए जो कर्मों को पराजित व नष्ट करने हेतु, वैराग्य से परिपूर्ण हो युद्ध हेतु तत्पर हुआ है, उसके लिए भी उपरोक्त साधन आवश्यक है, वैराग्य ही सुदृढ़ रथ है, सम्यक् कवच है, सम्यक् ज्ञान / तत्त्व ज्ञान / आत्म ज्ञान ही ढाल है,सम्यक् चारित्र अर्थात् संयम ही कर्म शत्रु का क्षय करने वाली तलवार है। उभय तप ही धनुष बाण है, निर्विकल्प आत्म ध्यान - धर्म ध्यान वा शुक्ल ध्यान ही दिव्य शक्तियाँ व ब्रह्मास्त्र है इन्हीं के द्वारा कर्म रूपी शत्रुओं का क्षय व मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति व स्वात्मोपलब्धि संभव है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

72

''पहला सुख निरोगी काया''

प्रत्येक प्राणी निरोगी रहना चाहता है, वह भी इसलिए कि निरोगी रहना उसका स्वभाव है, नियति है, प्रकृति है, शील है, गुण है, धर्म है । लौकिक सुख में भी स्वास्थ लाभ को प्रथम सुख कहा है - "पहला सुख निरोगी काया" देखो कभी अपने शरीर के साथ खिलवाड़ मत करो, शरीर के साथ अति मत करो, यह तो वाहन है इसे बिगाड़ कर मोक्ष मार्ग में सम्यक् गमन कैसे कर सकोगे? १. अनियमित समय पर भोजन करना । २. अति भोजन करना । ३. अति लंघन करना । ४. चिन्तायुक्त अवस्था में भोजन करना । ५. शारीरिक परिश्रम बिल्कुल नहीं करना । ६. बिना चबाये भोजन को यूँ ही निगल जाना इत्यादि ऐसे कारण हैं। जिनके कारण स्वस्थ व्यक्ति भी अस्वस्थ हो जाता है, फिर उसका धर्म ध्यान तो छूटता ही है आर्तध्यान भी पल्ले पड़ जाता है। स्वास्थ्य लाभ हेतु :- १. सात्विक भोजन करना । २. नित्य शारीरिक श्रम करना । ३. भूख लगने पर भोजन करना ।४. पर्याप्त नींद लेना । ५. अपने परिणामों को पवित्रतम बनाये रखना आवश्यक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

73

''स्वतन्त्रता - परतन्त्रता''

संसारी प्राणी प्रत्येक समय में कर्मों के बंधनों से बंधता चला जा रहा है, वह जो कोई भी कार्य करता है, उससे कर्म बन्ध अवश्य होता है, चाहे वह कार्य मन से किया जाये या वचन से या शरीर से । कार्य के प्रति तथा उसके फल के प्रति जितनी तीव्र आसक्ति होगी, उतना तीव्र ही कर्म का बन्ध भी होगा । यदि कर्मों के साथ तथा उसके फल के प्रति आसक्ति नहीं है, समस्त पर पदार्थों के प्रति वैराग्यमय / वीतरागमय भाव होंगे, तो कर्म का बन्ध भी कम होगा । कषाय की तीव्रता से कर्म बन्ध में तीव्रता व कषाय की मंदता से स्थिति और अनुभाग बन्ध में मंदता आती है। योग से मात्र प्रकृति व प्रदेश बन्ध होता है, वह जीव के लिए उतना हानिकारक नहीं है । मन की आसक्ति छोड़े बिना कर्मों के बंधन से मुक्ति नहीं पा सकते । संक्षेप में इतना ही जान लो, राग संसार का तथा वैराग्य मोक्ष का कारण है, अब आप जैसा चाहो वैसा करो । क्योंकि कर्म बन्धन के लिए आप स्वतन्त्र हैं, तथा फल भोगने के लिए परतन्त्र हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

74

''अति क्यों करें''

महानुभावों ! अति करना अच्छा नहीं होता, अति से इति का प्रारम्भ हो जाता है, भोजन की अति - स्वास्थ्य की इति करती है, प्रेम की अति व्यवहारिकता का नाश करती है, क्रोध की अति आत्मीय शक्ति को क्षीण करती है, विषयों की अति अंतरंग के सुख व आत्म शक्ति का क्षय करती है। द्वेष की अति अपने निर्मल परिणामों की इति करती है, मोह की अति व्यक्ति को पागल बना देती है, नींद की अति ज्ञानादि के क्षयोपशम को नष्ट करती है, निंदा की अति - निंदनीय बनाती है, मान की अति मित्रता भंग करती है, माया की अति व्यक्ति को वक्र व कठोर बनाती है, सरलता का नाश करती है, लोभ की अति व्यक्ति से समस्त पापों को करा लेती है। फैशन व शौक की अति भी नहीं करना है। हाँ ! यदि तुम अति करना ही चाहते हो तो परिणामों की निर्मलता में अति करो जिससे संसार के समस्त परिणामों (प्रतिफलों) से मुक्त हो जाओगे । भावों में विशुद्धि की अति करने से भव का नाश हो जायेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

75

''क्या है सदाचार''

सदाचार का आशय अच्छे कपड़े पहनने या अच्छा भोजन करने से या पैसा अधिक होने से या धनवान बन कर रहने से या वाक् चातुर्यता से नहीं है, अपितु सदाचार शब्द का अर्थ है - सद् = सम्यक्, आचार = आचरण करना । जिस आचरण में पाप की पंक तथा कषायों की ज्वाला और विषयों का विष नहीं हो ऐसा आचरण ही सदाचार होता है, सदाचार में सम्यक् ज्ञान का दिव्य प्रकाश, सम्यक् श्रद्धा का आधार एवं संयम की सुगंध नियामक है। और "शिष्टाचार" का अर्थ है सम्यक् और इष्ट आचरण अथवा ऐसा आचरण जो सम्यक् व उत्कृष्ट अवस्था को प्रदान करे । इसी तरह "सभ्यता" शब्द का अर्थ है सज्जन पुरुषों की सभा में बैठने के योग्य । जो सज्जन पुरुषों के मध्य वैसे ही सुशोभित होता है जैसे स्वर्ण की मुद्रिका में जड़ा हुआ हीरा । अतः सदाचारी मात्र बाह्य वेष - भूषा से नहीं अंतरंग के आचरण से बनो । तभी सदाचार के फल को सुख - शान्ति से प्राप्त कर सकोगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

76

''आदर्श बिन आदर्श नही बन सकते''

प्रत्येक साधक को गुरु की परम आवश्यकता होती है। जब तक कि वह स्वयं साध्य नहीं बन जाये, तब तक बिना गुरु के मार्ग का प्रारम्भ भी नहीं होता, गुरु के बिना न पथ मिलता है और न ही पाथेय । हमारा अहंकार हमें अपने दोषों से साक्षात्कार नहीं करने देता । जैसे - हम अपनी पीठ को नहीं देख सकते किन्तु दर्पण (आदर्श) हो तो देख सकते हैं वैसे ही गुरु के द्वारा हमें अपने गुण - दोष और अपराधों का बोध होता है, अपराध बोध होने पर ही दोष त्याग संभव है। गुरु हमारी आत्मा रूपी वस्त्र की धुलाई करके दोष का निराकरण करते हैं। जीवन में शिक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं किन्तु दीक्षा गुरु तो एक ही होना चाहिए । दीक्षा गुरु का आशय है, जो हमारा - हमारी आत्मा से साक्षात्कार करायें, हमें दोष मुक्त बनने हेतु फटकार सके, हमारे पथ को प्रकाशित कर सकें, हमें गिरने से उठा व बचा सकें ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

77

''पदार्थों का भी सदुपयोग''

संसार में कोई पदार्थ सर्वथा अच्छा नहीं है और न ही कोई पदार्थ बुरा है, अपेक्षाकृत कभी कोई पदार्थ अच्छा लगता है, तो कभी बुरा लगता है। कॉटे को निकालते समय वही कॉटा अच्छा लगता है लेकिन चुभ जाये तो वही बुरा लगता है। मिष्ठान वैसे अच्छे लगते हैं, किन्तु पित्त ज्वर के रोगी को कड़वे व अरुचिकर तथा शीतल पदार्थ व शरद हवा शीतकाल में प्रतिकूल जबकि ग्रीष्मकाल में अनुकूल होते हैं। जहर का सदुपयोग किया जाये तो औषधि बन सकता है तथा भोजन भी अजीर्ण होने पर विष बन जाता है। दुरुपयोग करने पर तो पुण्य भी नरक का कारण है, जबकि सदुपयोग करने पर पापोदय में भी पुण्य कमाया जा सकता है। अतः धर्मानुरागी महानुभावों प्रत्येक वस्तु का सदुपयोग करना सीखो जिससे जीवन सफल और सार्थक हो सके ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

78

''गुरु का रहस्य''

गुरु" शब्द में चार अक्षर है, जो चारों तीर्थ क्षेत्र, चारों अनुयोग, चारों पुरुषार्थों व चारो मंगल, उत्तम तथा शरण रूप हैं। वे चार अक्षर हैं - ग्+ उ + र + उ, जिसका अर्थ है - ग = गरिमा युक्त (चारित्रवान) उ = उदार (हितोपदेशी) र = रहस्योद्घाटक (धर्म के मर्म को समझने व समझाने वाला) अथवा आत्मा में रमण करने वाला । उ = उन्नतिशील, उद्यमशील अथवा उदासीन (संसार, शरीर व भोगों से परांगमुख / विरक्त) दूसरे शब्दों में गुरु का अर्थ है - जो गुणों में भारी हो अथवा रूह के गुणों को प्रकट करने वाला अथवा "गु" अक्षर का अर्थ है अंधकार और "रू" का अर्थ है विनाश करने वाला / अर्थात् जो स्वपर के मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम के अन्धकार का नाश करने वाला है, वही गुरु होता है, ऐसे गुरु को पाकर ही कल्याण के मार्ग में सच्चा जीवन शुरु होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

79

"भला बनना ही लाभ है"

जो व्यक्ति सबका भला, व प्रिय होता है, उसे सभी लोग अपना मानते हैं, भले ही वह पराया ही क्यों न हो? तथा जो व्यक्ति बुरा करने वाला होता है, उसे कोई अपना नहीं कहता और न ही कोई अपनाना चाहता है, सभी उससे बचना चाहते हैं, अपना भी हो तब भी उसे शत्रु मानकर छोड़ दिया जाता है। देखो - अपने शरीर में ही उत्पन्न रोग या विकार भाव अपने होते हुए भी पराये है, किसी को इष्ट नहीं लगते, क्योंकि वे स्वयं के ही घातक हैं, जहाँ पैदा होते हैं वहीं घात करते हैं इसलिए वे पराये के समान हैं तथा दूसरी ओर वन में उत्पन्न हुई जड़ीबूटियाँ, पर होते हुए भी शरीर की रक्षा करती है, बलिष्ठ व पौष्टिक बनाती है अतः स्वकीय वत् आदरणीय है अतः व्यवहार जगत में स्पष्ट है कि हित कारक पराया भी अपना है, और अहितकारक अपना भी पराया है। इसलिए राग - द्वेष आदि विभाव परिणामों को छोड़कर मोक्ष के साधक पुण्य का उपार्जन करते रहो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

80

"तपस्या की श्रेष्ठता"

कुछ लोग कहते हैं कि "दुष्ट को कितना भी उपदेश दो वह शिष्ट नहीं हो सकता, जैसे कि कोयले को कितना भी धोलो वह सफेद नहीं हो सकता ।" हमारा कहना है कि दुष्ट भी शिष्ट हो सकता है, और कोयला भी सफेद हो सकता है, यदि कोयले को जला दिया जाये, तपा दिया जाये, तब वह कोयला तपाग्नि में तप कर श्वेत हो जाता है, इसी तरह दुष्ट व्यक्ति सत्संगति में पड़कर ज्ञान, ध्यान व तप की अग्नि में तप जाये तो वह भी शिष्ट हो सकता है। एक अभव्य जीव भी मुनिराज की संगति में आकर मुनिव्रत अंगीकार कर दुर्द्धर तपस्या करके ज्ञान - ध्यान व तप की अग्नि में तपकर नौवें ग्रैवेयक में पहुँच जाता है। संसार में विद्यमान विभिन्न प्रकार की अग्नियाँ विभिन्न पदार्थों को शुद्ध करती है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

81

''उपचार करो, किन्तु उचित रीति से''

जब भी किसी रोग का उपचार गलत तरीके से किया जाता है, तब उपचार भी एक नया रोग बन जाता है। आप लोग भी जन्म, जरा व मृत्यु जैसे महारोगों का उपचार गलत विधि से ही नही अपितु विपरीत रीति से कर रहे हैं। इसलिए तो रोग अनादि काल से दिनों - दिन बढ़ता ही जा रहा है। इन रोगों की सही औषधि है, सम्यक्, दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र । अज्ञानी जीव मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान व मिथ्या चारित्र से रोग दूर करना चाहता है। बात वही हो रही है, ज्यों - ज्यों दवा दी गई मरज बढ़ता ही गया । प्रत्येक प्राणी की माँग, अविनाशी जीवन, अनन्त सुख, नित्यावस्था, सर्वज्ञता व सर्वदर्शीपना प्राप्त करना है। किन्तु नाशवान शरीर को अपना मान कर अविनाशी जीवन, क्षण ध्वंसी व पाप के बीज स्वरूप भोगों से अनंत सुख, कुछ पुस्तकें पढ़कर सर्वज्ञता, धूप का चश्मा व आई ड्रोप्स के द्वारा सर्वदर्शीपना कैसे प्राप्त हो सकता है? अर्थात् इनसे सब कुछ नहीं मिलेगा । प्यास शीतल व मिष्ट जल से ही शान्त होगी, मिष्ठान से, दूध से, घी से, समुद्र के खारे जल से नहीं, इसी प्रकार सच्चा सुख दुःखों के सम्पूर्ण अभाव से, अनन्त ज्ञान ज्ञानावरण कर्म के नाश से, सिद्धावस्था कर्मों के क्षय से ही मिलेगी अन्यथा असंभव ही है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

82

''जरूरी है जागरण भी''

महानुभावों ! व्यक्ति की तीन अवस्थाएँ होती हैं। १. जागृत अवस्था २. सुषुप्तावस्था ३. स्वप्नावस्था । जब जाग रहे होते है, सोते नहीं है, नींद नहीं ले रहे होते वह जागृतावस्था है। तथा जब नींद ले रहे होते है वह सुषुप्तावस्था है, कच्ची नींद में जब स्वप्न देख रहे होते है वह स्वप्नावस्था है। सोना भी श्रम से उत्पन्न शारीरिक व मानसिक थकान को दूर करने के लिए आवश्यक है, क्या आप जानते हैं? नींद पूरी न होने पर शरीर में आलस्य, थकावट, प्रमाद, तन्द्रा, दुर्बलता, बल की हानि, यौनि दौर्बल्य, इन्द्रियों में निर्बलता, विकृति, सिर दर्द तथा अन्य व्याधियों की उत्पत्ति भी हो जाती है। उचित समय पर सोये । दिन के उजाले में ऐसा काम न करे कि रात्रि में सो भी न सकें तथा रात्रि के अंधेरे में कोई ऐसा काम भी मत कीजिए कि दिन के उजाले में किसी को मुँह भी न दिखा सकें या दिन में जाग भी न सकें । खूब परिश्रम कीजिए, भूख लगने पर भोजन करो, गहरी नींद आने पर सो जाओ, स्वप्नों पर ज्यादा भरोसा मत करो, दिन में सोने की आदत मत डालो, धर्म कार्य में पूरा उत्साह रखो । यह ही सुखी जीवन का मार्ग है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

83

''मंगल परिणाम के बिना''

मंगल का अर्थ है पापों को गलाने वाला अथवा उत्कृष्ट सुख को देने वाला ।

चेतना के विशुद्ध परिणाम ही श्रेष्ठतम मंगल हैं। इसके बिना द्रव्य, क्षेत्र काल की मंगलता पूर्ण सार्थक नहीं हो सकती, चित्त की निर्मल परिणति वाले महानुभाव के लिए श्मशान भी ध्यान के योग्य स्थान है, किन्तु संक्लेश व क्रूर परिणाम वाला जिनालय में व परमेष्ठी के पास भी नरकादि अशुभकर्म का बंधक हो जाता है। निज परिणामों को मंगल बनाये बिना मंगल, बुध, सोम, गुरु, शुक्र या तीज, पंचमी, सप्तमी, एकादशी व त्रयोदशी भी मंगल स्वरूप नहीं होती । चन्द्रहास खड्ग लक्ष्मण के लिए शुभ सगुन (मंगल) तथा शम्बूक के लिए अशुभ, अमंगलकारी हो गया । व्यवहार में सच्चे देव, शास्त्र (धर्म), गुरु मंगल रूप हैं, किन्तु तब ही जब आप मंगल को पाने की पात्रता प्राप्त कर लें ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

84

''क्या है धर्म का आधार''

कोइ सम्यक् दर्शन को धर्म कहता है तो कोई सम्यक् चारित्र को, किसी ने क्षमा को धर्म माना है तो किसी ने अहिंसा को, कहीं परहित ही श्रेष्ठ धर्म कहा है, तो कही सत्यवादिता ही धर्म की रीढ़ मानी है, कहीं अनुकम्पा, करुणा, दया ही परम धर्म है तो कही सेवा, वैय्यावृत्ति तो कहीं उत्तम मार्दव आदि दश धर्म माने हैं, तो कहीं माता - पिता की सेवा करना। यद्यपि ये सब धर्म के लक्षण हैं, तथापि पूर्णता नहीं है। आखिर एक सामान्य व्यक्ति धर्म किसे माने? मेरी दृष्टि में ईमानदारी पूर्वक अपने कर्त्तव्यों का समयानुसार समीचीन पालन करना ही धर्म है, जो अपने पद, समय व स्थानानुसार अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकते हैं, वे चाहे कितना बड़ा भी ढ़ोग कर लें, सच्चे धर्मात्मा नहीं हो सकते।

85

''कैसी हो भक्ति''

जिनेन्द्र भक्ति का आशय पत्थर की मूर्ति को विराजमान कर अहंकार का पोषण करना नहीं है, अपितु उन भगवंतों के गुणों में अनुराग करना है, उनके निमित्त से अपने स्वरूप की खोज करना है, जिनेन्द्र बनने का तीन योगों से पुरुषार्थ करना है, उनको निमित्त बनाकर अपने पाप पंक को धोना है, भवदधि से तिरने के लिए नौका बनाना है अथवा भक्ति की रज्जू से भवकूप से बाहर निकलना है, आत्मा रूपी वस्त्र को निर्मल करने हेतु साबुन बनाना है। जिनेन्द्र देव के गुणों को प्राप्त करने की पिपासा को शांत करने का कार्य है, न कि दूसरे को पूजा में कोहनी मारना, प्रथम अभिषेक करने वाले के सिर पर कलश ही मार देना या जिनालय में ही धन के मद में चूर हो गाली गलौज करने लगना।

86

''क्या है आगम शास्त्र/श्रुत ज्ञान'

आगम का अर्थ है -

आ = आप्त प्रभु (जिनेन्द्र भगवान) द्वारा कथित ग = गणधर परमेष्ठि द्वारा संग्रहीत, म = मुनिराजों द्वारा लिपिबद्ध या रचित । शास्त्र शब्द का अर्थ है - श = शमन (कषायों का /विकृत मनोभावों का) करने वाला, अस्त्र = हथियार / अर्थात् वह साधन जिससे आत्मा के विकृत भाव व कषाय का शमन किया जाता है। "श्रुत" का अर्थ है, श्रु = सुनने वाला, त = तल्लीन होकर अर्थात् शास्त्रों का उपदेश तल्लीन होकर सुनना चाहिए । ज्ञान शब्द में "ज्ञ" का अर्थ है, ज्ञायक स्वभाव अथवा ज्ञाता ज्ञप्ति भाव को, "न" = नष्ट नहीं होने दें । मनीषी विद्वानों द्वारा, असंयमी जनों द्वारा, ढोंगी पुरुष द्वारा विरचित शास्त्र, सच्चे शास्त्र नहीं होते ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

87

''प्रभाव संगति का'

जिस प्रकार उपसर्ग के प्रभाव से शब्दों का भी बहुमूल्य व अवमूल्यन हो जाता है, उसी प्रकार मानव भी उपसर्ग से उत्थान व पतन को प्राप्त होते हैं। शुभ शब्दों (उपसर्गों) की संगति से शब्दों का मूल्य बढ़ जाता है तथा अशुभ शब्दों से घट जाता है। जैसे 'भाव' शब्द में 'अ' लगाने से 'अभाव' दुर से 'दुर्भाव', 'कु' से 'कुभाव' बनते हैं, इसी तरह "भाव" शब्द में 'सु' लगाने से 'सुभाव' स्व से 'स्वभाव' सम से 'समभाव' प्र शब्द लगाने से 'प्रभाव' बनता है। इसी तरह सत् - संगति से व्यक्ति का उत्थान तथा कुसंगति से पतन ही हो जाता है।

88

''संत समागम''

जमीन पर गन्ने के रस की एक बूंद गिर जाये तो वह मिट्टी मीठी, नमक के पानी की बूंद गिर जाये तो वह मिट्टी खारी, नींबू के रस की बूंद से खट्टी, मिर्ची के रस की बूंद से चरपरी, आँवले के रस की बूंद से कषायली हो जाती है अथवा मुट्ठी में कोयला रखने से हाथ काला, चंदन के चूरा रखने से सुगंधित, खड़िया या चूना से सफेद, रक्त से गंदा, प्याज - लहसुन से बदबूदार हो जाता है। पुष्प, इत्र, रक्त व साबुन की संगति से वस्त्र सुगंधित, दुर्गंधित, गंदे व साफ हो जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मानव को संगति जैसी मिलती है वैसा ही बन जाता है। कहा भी है-

"कदली, सीप, भुजंग, मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, वैसा ही फलदीन।।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

89

''दुःख का कारण''

अपेक्षावृत्ति प्राणी मात्र के लिए दुःख का कारण है। जो जितनी गहरी अपेक्षा रखता है, वह उतना ही अधिक दुःखी हो जाता है, जहाँ अपेक्षावृत्तियों की उपेक्षा हो जाती है, जीवन में वहीं से सुख का मार्ग आरम्भ हो जाता है। कई बार व्यक्ति कहते हैं कि हमें आपसे यह अपेक्षा नहीं थी, हमने कभी ऐसा नहीं सोचा था। जिस व्यक्ति का अन्य किसी व्यक्ति या वस्तु से जितना गहरा राग होता है, उससे उतनी गहरी अपेक्षा रखते हैं। तब उन्हें उसके वियोग होने पर या नष्ट होने पर उतना ही गहरा दुःख होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

90

''सप्त सकारी चूर्ण''

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में तन की स्वस्थता के लिए सप्त सकारी चूर्ण का कथन मिलता है, जिस चूर्ण में सनाय सोंठ आदि होते हैं, उसी प्रकार चेतन की स्वस्थता के लिये भी सप्त सकारी चूर्ण आवश्यक है। चेतन के सप्त सकारी चूर्ण में सात पदार्थ होते हैं। वे पदार्थ हैं - पहला सम्यक्त्व, दूसरा सुबोध, तीसरा संयम, चौथा संवेग भाव, पाँचवा सरलता, छठवाँ समता, सातवाँ सहानुभूति । सप्त वस्तुऐं सत्य से साक्षात्कार कराने वाली हैं स्वर्ग व शिव धाम की प्रदायक हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

91

''स्व का अध्ययन ही है - स्वाध्याय''

जो अपनी आत्मा को अध्याय बनाकर अध्ययन करना जानता है, वह प्रकृति के किसी भी पदार्थ से आत्म बोधक ज्ञान प्राप्त कर सकता है, उसके लिये ताश के पत्ते हो या नदी, सागर, पर्वत, वन, अटवी, कंदरा, महल अथवा मसान । सभी से स्वाध्याय कर सकता है। इक्का - एकत्व विभक्त आत्मा का, दुग्गी - राग - द्वेष की, तिग्गी - तीन काल व गुप्ति की, चौकी - चार गति व कषायों का प्रतीक है। पंजी - पाँच पाप, महाव्रत, समिति, इन्द्रियजय पंचाचार, छक्की - छह द्रव्य व षडावश्यक की, सत्ती - सप्त तत्व, शील,दाता के गुण, परम स्थान की, अट्ठी - आठ गुण, अष्ट कर्म, अष्टम वसुधा का प्रतीक है। नहला - नव पदार्थ, नौ कषाय की, दहला - दश धर्म का बोधक है, गुलाम - संसारी जीव का, बेगम - जिनवाणी की ओर संकेत करती है। बादशाह - सिद्धों का प्रतीक है, ऐसा मानकर जब एक जुआरी भी स्वाध्याय कर सकता है, तो तुम क्यों नहीं कर सकते ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

92

"द" वर्ण का उपदेश

"द" अक्षर ने आत्म कल्याण का समग्र उपदेश दिया है। 'द' अक्षर का प्रथम अर्थ है - देव दर्शन, देव पूजा अर्थात् वीतरागी देव - अरिहंत व सिद्ध परमेष्ठी की अथवा नव देवताओं की पूजा करना।'द' अक्षर का दूसरा अर्थ है-दया, संसार में जितने भी चराचर या त्रस व स्थावर जीव हैं उन सबके प्रति मन, वचन, काय से अहिंसा का भाव रखना। 'द' अक्षर का तीसरा अर्थ है, उत्तम पात्रों को आहार आदि चार प्रकार का दान देना। 'द' अक्षर का चतुर्थ अर्थ है - दीक्षा (दिगम्बर मुनि की) ग्रहण करना अर्थात् सर्व परिग्रह त्याग करना। 'द' का पाँचवा अर्थ है - दमन करना अर्थात् इन्द्रियों का दमन व कषायों का शमन करना। 'द' अक्षर का षष्ठम अर्थ है, देहान्त - अर्थात् पाँच शरीरों से रहित मोक्ष को प्राप्त करना, सप्तम अर्थ है - दृष्टा बनना अर्थात् आत्मा के दर्शन आदि अनंत गुणों की प्राप्ति करना।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

93

"अनेक से भी एक"

मानव जो कुछ चेतन व अचेतन परिग्रह का संग्रह करता है, उन सबके पीछे उद्देश्य केवल एक ही रहता है। चाहे खेत खरीदे या बगीचे लगाये, दुकान खोले, खेती करे या कोई उद्योग आरम्भ करे, भवन निर्माण, वाहन क्रय करना, सुन्दर कन्या के साथ पाणि - ग्रहण, पुत्रादि की प्राप्ति, भोगोपभोग का प्रचुर संग्रह, उत्तमोत्तम व्यंजनों का भोजन, पंचेन्द्रियों के विषयों की पूर्ति हेतु असीमित पदार्थों की प्राप्ति करना, वस्त्राभूषण, मनोहारी दृश्य, कर्णप्रिय संगीत, मादक गंध भी एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए है जिसे सब ग्रहण करते हैं, वह उद्देश्य है - सुख शान्ति की प्राप्ति। सुखाभासों में मन को उलझाकर व्यक्ति शाश्वत सुख से ही वंचित नहीं होता, बल्कि सुख शान्ति के मार्ग से भी भटक जाता है। प्रत्येक व्यक्ति इन साधनों से भी एक सुख, शान्ति व परमानंद की ही कामना करता है।

94

''महत्वपूर्ण साधन नहीं साधना है''

किसी व्यक्ति के पास सुन्दर भवन, नई - नई गाड़ियाँ, आज्ञानुसारी पुत्र, मनोहारिणी स्त्री, सेवा - भावी नौकर, आत्मीय सहोदर, सहयोगी मित्रजन, वातानुकूलित आराम दायक गृह, यथेष्ट भोजन, आकर्षक वस्त्राभूषण, असीम धन - दौलत होने पर भी सुख - शान्ति के बिना ये समस्त साधन व्यर्थ है, जिस प्रकार विद्युत के बिना विद्युत के सभी उपकरण व्यर्थ हैं। यदि सुख - शान्ति बिना साधनों के प्राप्त हो जाती है, तब भी ये समस्त साधन व्यर्थ हैं। महानुभावों ! यथार्थता भी यही है कि सुख - शान्ति साधनों से नहीं आत्मा की विशुद्ध साधना व परिणामों की निर्मलता से ही सम्भव है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

95

''आओ अपनी समीक्षा करें''

और सुनों, धर्मात्मा वह कहलाता है, जिसके जीवन में चार भावनाएँ समाविष्ट हों ! प्रथम - प्राणी मात्र के प्रति मित्रता का भाव । इसका आशय है **"परेषां दुःखानुत्पत्ति ऽभिलाषा मैत्री ।"** अर्थात् किसी भी प्राणी के जीवन में दुःख की उत्पत्ति न हो, ऐसी भावना मैत्री भावना है। दूसरों के दुःखों को अपना दुःख समझना ही मैत्री भावना है। दूसरी भावना :- गुणीजनों को देखकर आनन्द से, उल्लास से, प्रमोद भाव से, प्रसन्नता से भर जाना । अपने से बड़े साधर्मी के प्रति श्रद्धा भक्ति, विनय व हार्दिक आदर सम्मान का भाव रखें ।

तीसरी भावना :- दीन दुःखी जीवों के प्रति करुणा का भाव रखना । अर्थात् किसी भी जीव को दुःखी देखकर अंतरंग से पिघल जाना पानी - पानी हो जाना उसके दुःखों को दूर करने की भावना व प्रयास करना। चतुर्थ भावना :- विधर्मी के प्रति मध्यस्थ भाव रखना। अर्थात् जो व्यक्ति धर्म के विपरीत प्रवृत्ति करने वाले हैं, उनके प्रति तटस्थ रहना उनसे राग नहीं करना और द्वेष भी नहीं करना वचनों से धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाओ यदि वह नहीं समझे विपरीत ही प्रवृत्ति करे तो मौन व तटस्थ हो जाओ ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

''नीतिकार कहते हैं''

कुछ महानुभाव आकर पूछते हैं कि मित्रता किससे करें? "एको मित्रो भवति भूपति यतिर्वा" अर्थात् मित्रता भूपति - राजा या यति/ साधु से करना चाहिए। किन्तु मनीषियों ने कहा है - "राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा।" अर्थात् राजा किसी का मित्र हुआ ! क्या ऐसा किसी ने देखा व सुना है। राजा किसी का मित्र नहीं होता, अतः मित्रता यति यानि साधु से करनी चाहिए। अथवा जो पापों से बचाने वाला हो, धर्म के कल्याण के व हित के मार्ग में प्रवृत्ति कराने वाला हो, गुप्त वार्ता, क्रियाओं को व रहस्मयी सूत्रों को गुप्त ही रखता हो, गुणों को प्रकट करने वाला हो, आपत्ति काल में कभी साथ न छोड़े, यदि अपनी गुप्त बात बतायें, तो सुनकर किसी से कहे नहीं, प्रिय वस्तु का लेन - देन करे, जो कुलीन हो, अपयश से डरे ऐसे व्यक्ति से अवश्य मित्रता करनी चाहिए। किसी कवि ने कहा भी है -

मन मिले तो मीत बनाओ, चित्त मिले तो चेला।
साधु मिले तो संगति कीजे, नहीं तो भला अकेला ।।

मित्र ढाल सम कीजिए, हरदम साथी होय।
दुःख में तो आगे रहे, सुख में पीछे होय ।।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

"सद् गृहस्थों के मूल कर्म"

परम पूज्य आचार्य भगवंतों ने व महामनीषी योगीश्वरों ने गृहस्थों के लिए आत्म हितार्थ पाँच कर्म कहे हैं, जिनका प्रत्येक गृहस्थ को नित्य ध्यानपूर्वक पालन करना चाहिए। **प्रथम है** - स्व उन्नति के कार्यों में सदैव तीनों योगों से संलग्न रहना।

दूसरा है - जिनेन्द्र देव (सच्चे देव) की तीनों कालों में यथा योग्य विधि से पूजन करना। **तीसरा है** - अपने कुटुम्बीजन, बन्धुवर्ग, नाते रिश्तेदार व स्व जातीय व कुल, वंश, परम्परा के अनुगामी, धर्म पोषकों की सहायता करना **चौथा कर्म है** - अपने घर या नगर में विराजमान व पधारे अतिथि की आहार, औषधि, वसतिका, उपकरण ज्ञानादि देकर सेवा वैयावृत्ति कर साधना में सहायक बनना अर्थात् सदैव अतिथि सत्कार करना।

पाँचवाँ नैतिक कर्म है - पूर्व काल में पूर्वजों के द्वारा अर्जित कीर्ति की रक्षा करना व उसे वृद्धिंगत करना। ऐसा कोई काम न करना जिससे आपका सम्मानीय कुल कलंकित हो जाये।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

"चिंता छोड़ो चिंतन करो"

आत्महितार्थ मुमुक्षु,धर्मानुरागी जनों को नित्य इस प्रकार का सम्यक् चिन्तवन व मनन करना चाहिए, जिससे उसकी बुद्धि श्रेयोमार्ग, उन्नति के मार्ग में ही गतिशील रहे । मैं कौन हूँ? मैं कैसा हूँ? मेरी आत्मा में किस - किस प्रकार के गुण विद्यमान हैं? कितने गुण प्रकट कर लिये और मुझे कितने गुण प्रकट करना बाकी हैं। मैं कहाँ हूँ? कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है? अपने स्वभाव को कैसे प्राप्त करूँ? मेरे लिए प्राप्य, उपादेय व सेवनीय क्या है? उसकी प्राप्ति कैसे व किस निमित्त से होगी, यदि ऐसा नहीं किया तो मति अधः पतन की ओर स्वभावतः गतिशील हो जायेगी । ये चार पंक्तियाँ भी गुन - गुनाने व चिंतन करने के योग्य हैं।

हम चले देवता कहलाने, पर मानव भी कहला न सके ।
हम चले विश्व विजयी बनने, पर विजय स्वयं पर पा न सके ।
हम चाहते हैं बस कैसे भी जल्दी से भगवान बनें ।
किन्तु नहीं चाहते हम कि, इससे पहले इंसान बनें ।।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

"कल्याण की आठ बातें"

१. जहाँ भी रहो, आवश्यक बनकर रहो, किसी के ऊपर भार भूत मत बनो, आधार भूत और सार भूत स्वस्थ अवस्था में जीओ ।
२. सदैव निर्मल चित्त, प्रसन्नमुख व स्वस्थ तन के साथ जीवित रहने के लिए कृत संकल्पित रहो ।
३. किसी को अपना विश्वस्त बनाकर और स्वयं उसके विश्वस्त बनकर जीओ तभी तनाव मुक्त रह सकोगे ।
४. प्रत्येक वस्तु का सदुपयोग करने की आदत डालो, जिससे जीवन का भी सही सदुपयोग कर सको ।
५. कृतज्ञता का भाव धारण करो, तथा दूसरों की शिकायत को धैर्यपूर्वक सुनो।
६. उत्तेजना, क्लांति व शोक से बचो, उत्साह युक्त व अप्रमादी जीवन जीओ।
७. सदैव सकारात्मक व गुण ग्राहक दृष्टिकोण बना कर जीओ ।
८. उद्यमशील, दृढ़संकल्पी, साहसी करुणाशील व विनम्र बनो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

''मोक्ष का पंथ''

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का रास्ता है। मार्ग को प्राप्त किये बिना मंजिल की प्राप्ति दुःसाध्य नहीं असम्भव ही है। सम्यक् दर्शन का अर्थ है, सत्य दृष्टिकोण, जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही मानना। सम्यक् दृष्टि ही अन्तर्दृष्टि होती है, सम्यक् दृष्टि के साथ विद्यमान समस्त ज्ञान भी सम्यक् व सच्चा कहलाता है। दृष्टि की समीचीनता के बिना पदार्थों का यथार्थ स्वरूप समझ पाना असंभव ही है। इस ज्ञान से ही स्वकीय शाश्वत वैभव से परिचय होता है। मोक्ष प्राप्ति का मार्ग दृष्टिगोचर होता है। सम्यक् चारित्र का अर्थ है, सही दिशा में चलना अर्थात् ऐसा आचरण जो तुम्हें कर्मों से मुक्ति दिला दे, जिससे कर्म बन्ध न हो। राग - द्वेष कर्म बन्ध के कारण हैं और ज्ञान - वैराग्य के द्वारा अवतरित संयम तथा तप कर्म निर्जरा के हेतु है। ममत्व भाव ही संसार है तथा निर्ममत्वता ही मोक्ष है। निज आत्मा को छोड़कर शेष सभी पदार्थों के प्रति निर्ममत्व भाव जागृत होता है - रत्नत्रय से। अतः रत्नत्रय ही मोक्ष का पंथ है।

देव भजो अरिहंत नित, गुरु सेवा निर्ग्रंथ।
दया धर्म पालो सदा, यही मोक्ष का पंथ।।

''स्वकीय पुण्य के बिना''

संसार में सभी प्रकार के पदार्थ हैं, व्यक्ति हैं, अवस्थाएँ हैं। पुण्यात्मा को इष्ट वस्तु, व्यक्ति, अवस्थाओं का सहज ही योग बन जाता है। पूर्वकृत सातिशय पुण्य के तीव्र उदय में किसी भी /कोई भी अनुकूलता की प्राप्ति असंभव नहीं है। दूरगत, दुःसाध्य, दुर्गम व दुर्लभ पदार्थ भी महान पुण्यात्मा के लिए निकटवर्ती, सहज साध्य, सुगम व सहजोपलब्ध हो जाता है। दूसरी ओर पाप कर्म के तीव्र उदय में भवन में स्थित, प्रत्यक्ष में विद्यमान, सर्वसामान्य के लिए सहजोपलब्ध हस्तगत, उदरगत वस्तु भी नहीं मिल पाती, यदि मिल जाये तो भोग नहीं सकता। यदि भोग भी ले तो सुख के बजाय दुःख की ही हेतु होती है। तीव्र पाप के उदय में औषधि जहर बन जाती है, रक्षक - भक्षक बन जाते हैं। माता - पिता, भ्राता व त्राता भी प्राण संहारक बन जाते हैं। सम्पत्ति - विपत्ति बनकर दुःख देती है। पुत्र, मित्र, भ्राता आदि भी शत्रु बन कर सताते हैं। अतः ऐसे कार्यों से बचो जिनसे तीव्र पाप कर्म का बंध होता है। कहा भी है :-

सकल पदारथ हैं जगमाहीं।करम हीन नर पावत नाहीं।।
पुण्य हीन को न मिले, भली वस्तु को जोग।
दाख पके पर काक के, होत कण्ठ में रोग।।

102

''जैसे निमित्त वैसे भाव''

पर दोषों के देखने में रुचि, चर्चा करने में रुचि तथा धर्म व धर्मात्मा की निन्दा सुनने में, निंदा करने में रुचि, उन व्यक्तियों का अपमान करने में (दोष युक्त होने के कारण), तिरस्कार करने में अथवा उन्हें हीन मानकर अपने अहंकार का पोषण करने में, उनकी अवनति से अपनी उन्नति का चिंतन करने में निरन्तर अशुभ परिणाम ही होते हैं, तथा गुणवान व्यक्ति के गुणों को रुचिपूर्वक सुनने में, चर्चा करने में, उन के सद्गुणों का चिंतन करने में, प्रशंसा करने में अथवा उन्हें देखने में रुचि, प्राप्त करने की भावना, उन्हीं व्यक्तियों से मिलने में रुचि रखना, उनका सम्मान करना, उनके प्रति विनय व आदर का भाव प्रकट करना, पूजा व प्रशंसा करना, प्रत्येक कार्य में शुभ परिणाम ही होते हैं। अशुभ निमित्त अशुभ के लिए व शुभ निमित्त शुभ के लिए कारण होता है। महानुभाव, अब आप स्वयं सोच लो, किस निमित्त को प्राप्त करना है और किस निमित्त से बचना है। संसार में दोनों प्रकार के निमित्त भरे पड़े हैं। जिसको जो चाहिए उसको वह मिल ही जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

103

''आज यहाँ भी सूर्योदय''

जहाँ सूर्योदय हो चुका है वहीं दिन है, वहीं प्रकाश है, वहीं पुष्प - कली व वृक्षों का विकास है वहीं पक्षियों का कलख व पशुओं की आनन्ददायी किलोलें दृष्टिगोचर होती हैं, वहीं प्रकृति के पदार्थों का दर्शन व उनका लाभ संभव है, अंधकार कालरात्रि के समान है। इसी प्रकार जिस नगर, ग्राम, शहर, जंगल, अटवी, गुहा में दिगम्बर संत विराजमान होते हैं वहीं धर्म का दिन है, प्रभावना का दिव्य प्रकाश है। वहीं साधर्मियों का जीवन सार्थक है, वहीं आबाल वृद्धों में धार्मिक संस्कारों का विकास है, वहीं जीवन्त मोक्ष मार्ग स्थिरता को प्राप्त हो जाता है, वहीं जिन शासन का अखण्ड - शाश्वत नंदादीप प्रज्वलित रहता है, जो भव्य जीवों के अंतस्तल में विद्यमान समस्त अंधकार को निष्कासित करनें में समर्थ होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

104

''को बैरी को मित्र हैं''

हमारी आत्मा का जितना अहित विषय - कषायें करती हैं, उतना और कोई नहीं कर सकता । हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील जितना अहित करते हैं, उतना अहित अकेला परिग्रह पाप करता है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इन्द्रिय के विषय जितना आत्मा को कर्म बंधन में बांधते हैं, उतना असंयमित मन अकेला ही बांधता है। जितना घातक क्रोध, मान व माया कषाय है उससे कई गुणा घातक अकेला लोभ है, जो सभी पापों का बाप है। संसार के सभी प्राणी मिलकर कल्पकाल में भी उतना अहित नहीं कर सकते, जितना कि आपके अंदर में विद्यमान विषय-कषाय एक अन्तर्मुहूर्त में ही करते हैं। तथा संसार के सभी प्राणी मिलकर आपका उतना हित नहीं कर सकते जितना हित आप अपनी आत्मा को सम्यक् दर्शन (सच्ची श्रद्धा), सम्यक् ज्ञान (विवेक/ आत्म ज्ञान / तत्त्व ज्ञान), सम्यक् चारित्र (सच्चा आचरण) सम्यक् त्याग, धर्म ध्यान को प्रकट करके कर सकते हैं। अपनी आत्मा को अहित मार्ग से बचा कर कल्याण मार्ग में आरूढ़ करो, नहीं तो अनादि काल की तरह अनन्त काल तक संसार सागर में ही गोते खाते रहोगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

105

''साथ में ये भी देना''

श्रेयोमार्ग का प्रार्थी एक भक्त भगवान के चरणारविन्द में अपना सर्वस्व समर्पण करता हुआ प्रार्थना करता है, हे प्रभो ! यदि आप मुझे भौतिक धन सम्पत्ति दें तो साथ में उदारता - लग्नशीलता व दान की प्रवृति भी दें यदि बुद्धि, विद्या, कला व ज्ञान देते हैं तो साथ में विनम्रता, सेवा भाव, हित प्राप्ति व अहित परिहार का विवेक, सर्वकल्याण की भावना भी देना । यदि उत्तम शरीर दें तो साथ में अहिंसा, साधर्मी सेवा, साधुओं की वैय्यावृति, संयम व परोपकार, तीर्थयात्रा आदि सत् कार्यों का व्यसन भी देना । यदि कण्ठ की मधुरता, सरसता व मोहकता दें तो साथ में सत्यवादिता, गुणीजनों की प्रशंसा, हितोपदेशिता व प्रभु परमात्मा की भक्ति करने की लत व लगन और दे देना । यदि शरीर में विशिष्ट शक्ति दें तो साथ में धर्म - धर्मात्मा की रक्षा, सेवा, जीव दया, उत्तम तप करने की तीव्र भावना भी भर देना ! यदि श्रेष्ठ मन दें तो साथ में तत्त्व चिंतन, धर्म ध्यान, गुण ग्राहकता, स्वाध्याय में लीनता भी देना । उच्च पद के साथ विनम्रता, न्याय प्रियता, साधर्मी के प्रति वात्सल्य भाव व आदर्श चर्या भी अवश्य देना । नहीं तो हे प्रभु मैं इन सभी बाह्य उपलब्धियों से रहित ही ठीक हूँ क्योंकि सदुपयोग के बिना / दुरुपयोग करने से प्रत्येक वस्तु या उपलब्धि अनर्थकारी हो जाती है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

106

''हाँ तुम भी तो उन्हीं के वंशज हो''

हीरे का टुकड़ा हीरा ही होता है और स्वर्ण का टुकड़ा या कण भी स्वर्ण ही है, गंगा का बिंदु भी गंगा जल ही है। इसी प्रकार आसन्न भव्य जीव चाहे आज बने या कल, उसे निश्चित रूप से सिद्ध ही बनना है। जो सिद्ध परमेष्ठी बन चुके हैं, वे भी पहले हम जैसे ही थे, तथा कल हम भी उन जैसे ही बन जायेंगे। सिद्ध परमेष्ठी की उपासना में, ध्यान में, चिंतन करने में या तत्त्व चर्चा करने में भय और संकोच कैसा? सिंह का बच्चा भी सिंह के लक्षणों से युक्त ही होता है, उसके आकार, पराक्रम, बाह्य भेष व परिवेश सिंह के समान ही होता है। उसी प्रकार साधु, उपाध्याय व आचार्य परमेष्ठी भी क्रमशः शिशु, बालक, किशोर, युवा सिद्ध हैं जो सिद्धत्व की ओर गतिशील हैं, अभी पूर्णतः सिद्धत्व भले ही प्रकट नहीं हुआ किन्तु दर्शन, ज्ञान, चरित्र, आत्म लीनता व वीतरागता आदि उन्हीं की शैशव अवस्था के नाम हैं। सिद्ध परमेष्ठी से अर्थात् अपनी दशा के धारक पुरुषों से क्या डरना ? तुमको भी नित्य अपनी शुद्ध और सिद्ध दशा का चिंतन करना चाहिए। सम्यक् दृष्टि श्रावक को गर्भस्थ बालक की तरह माना जा सकता है, साधु बन जाना सिद्धत्व की लघु अवस्था है जो भविष्य में पूर्ण सिद्ध बन जायेगा।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

107

''आत्म भवन में मिले सुख अपारा''

आत्म भवन में निवास किये बिना आत्मा का सच्चा हित नहीं हो सकता। आत्मा तभी अनन्त सुख, शान्ति, शक्ति, ज्ञान दर्शन आदि अनन्त गुणों का भोक्ता हो सकता है जब उस भवन में निवास करे। उस आत्म भवन की नींव सम्यक् दर्शन है, जो आठ अंग व आठ गुणों से सहित है। चार, बारह, सोलह व पच्चीस भावनाओं से संयुक्त है, पच्चीस दोष, पाँच अतिचार से रहित है वह नींव उपशम आदि के भेद से तीन प्रकार की व व्यवहार निश्चय के भेद से दो प्रकार की है। उस आत्म भवन की दीवार पाँच प्रकार का सम्यक् ज्ञान है, किन्तु एक साथ अधिक से अधिक चार दीवार की तरह चार प्रकार का ही होता है। वह सम्यक् ज्ञान की दीवार तीन दोषों से रहित व आठ अंग सहित होनी चाहिए। तब ही उस पर चरित्र की छत डाली जा सकती है। वह मूल में दो प्रकार की है। सागार (देश - चारित्र) व अनगार (फिनिशिंग) / चिकना पन या सफाई व कलई आदि करने का नाम है अनशन आदि बाह्य तप तथा अंतरंग में नाना प्रकार के रंग - रोगन करने का नाम है - अंतरंग तप। इसके उपरान्त उसमें विभिन्न प्रकार के रत्न दीपों का प्रकाश करने व सजावट करने का नाम है आत्म ज्ञान व आत्मध्यान। इसका फल है मोक्ष की प्राप्ति। इस अवस्था का नाम ही है, आत्म भवन में चिर काल की विश्रांति। महानुभाव! तुम्हें भी यदि यही चाहिए तो तुम भी ऐसा ही पुरुषार्थ करो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

108

''आओ नाश्ता तो कर ही लो''

अरे ! उस व्यक्ति को कौन बुद्धिमान कहेगा, जो पूर्ण (भरपेट) भोजन की लालसा में दिन भर भूखा बैठा रहे, नाश्ता दिये जाने पर नाश्ता भी न करे । उसे भी इंकार कर दे ? देखो, जब क्षुधा की तीव्रता होती है, तब व्यक्ति अच्छा, बुरा, ताजा - बासी, जूंठा या भला कुछ नहीं देखता, जितना भी मिले उसे पहले गटक जाना चाहता है, किन्तु जो पूरे के चक्कर में आधे को छोड़ दे, वह लालची कुत्ते की तरह उभय गति में दुःख का ही पात्र होता है। जो पूर्ण धर्म पालने का बहाना करके अल्प धर्म का भी पालन न करे, वह मक्कार है, वंचक है, बेईमान है, आत्मघाती है। जो महाव्रती सकलव्रती न बने तो क्या उसे अणुव्रती भी नहीं बन जाना चाहिए? जब तक सूर्य का प्रकाश न हो तब तक टॉर्च या दीपक के प्रकाश में चलना क्या बुरा है? क्या कभी कोई बाग को लेकर चला है? अरे ! एक फूल लेकर ही तो चला जाता है, भले ही बाद में पुण्य से गुलदस्ता ही क्यों न मिल जाये । इसी तरह जो प्राणी (मानव) सकल संयमी व महाव्रती बनने में असमर्थ है, उसे देशव्रती / अणुव्रती बन जाना चाहिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

109

''योद्धा बनो तो ऐसे''

निःसन्देह यह बात सत्य व स्वीकारने योग्य है कि ज्ञान आत्मा के लिए, कर्म रूपी शत्रु का घात करने में तलवार के समान है। आत्म हितार्थी, कर्मों से विजय प्राप्ति के अभिलाषी के पास यह तलवार रूपी आत्म ज्ञान होना आवश्यक है अन्यथा विजय असंभव है। किन्तु मात्र शब्द ज्ञान रूपी काठ की तलवार भी बेकार व अनर्थकारी है तथा ढाल व कवच से रहित अकेली तलवार से ही क्या विजय संभव है? आप कहेंगे नहीं? क्योंकि जब तक सम्यक् दर्शन रूपी ढाल और आत्म रक्षा का चारित्र रूपी सुदृढ़ कवच न हो, तब तक युद्धक्षेत्र में जाना अनर्थकारी ही सिद्ध होगा। कर्मों से विजय भी वही प्राप्त कर सकता है, जिसके पास अष्टांग सहित व त्रिदोष रहित सम्यक् ज्ञान रूपी प्रखर तलवार हो और जिसमें शत्रु के द्वारा छोड़े गये कर्म रूपी तीर प्रवेश न पा सकें ऐसा सुदृढ़ कवच रूपी सम्यक् चारित्र हो तभी कर्मों के युद्ध में विजय प्राप्त कर पाना संभव है। और तभी मुक्ति रूपी दुल्हन को प्राप्त कर सकोगे । और सुनो, मुक्ति सुन्दरी सौत के साथ नहीं रहती, पहले संसार की दुल्हन को नेमिनाथ, वासुपूज्य, मल्लिनाथ, वर्धमान की तरह ग्रहण ही मत करो या ग्रहण कर ली है, तो आदिनाथ, शांतिनाथ, भरत आदि की तरह छोड़ दो, जिससे मुक्ति सुन्दरी तुम्हारे गले में वरमाला डाल सके ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

110

''क्या है अनुशासन?''

शास्ता के शासन का अनुगमन करना ही अनुशासन है। शास्ता वही है जो सदैव अपने शासन में है जिस पर कभी भी किसी भी काल में दूसरे का शासन नहीं चलता । अनुशासन आत्म शांति व जीवन की चरम सफलता का प्रमुख सूत्र है। आत्मानुशासन से जीवन का चरम व परम विकास संभव है, इसके बिना कोई भी चरम शरीरी या परम शरीरी नहीं हो सकता । जो स्वयं को अपने अनुशासन में ढाल ले उसके ऊपर दूसरों को शासन करने की आवश्यकता नहीं होती, अनुशासन अंदर से उत्पन्न हो बाहर से आरोपित न हो। अनुशासन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, पारमार्थिक, आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक इत्यादि अनुशासन ही स्व - पर की सफलता का कारण है। अनुशासन ही कल्पवृक्ष की तरह है तथा सफलता है उस पर चढ़ने वाली लता।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

111

''न धन है, न समय और न ही शक्ति''

क्या बताऐं? आज प्रत्येक श्रावक कहता है मेरे पास धन नहीं है, उसके पास मन्दिर, मूर्ति, धर्मानुष्ठान, धर्म प्रभावना, पात्र दान, जिनवाणी के प्रकाशन, गरीबों की सेवा के लिए धन नहीं है। हमारे पास / साधु - सन्तों के पास आएगा तो रोता - रोता सा । किन्तु हमें आश्चर्य होता है, वही व्यक्ति जो धर्म - कार्य में दान देने के लिए रो रहा था, धन नहीं है कह रहा था । अब वही जुआ में, मदिरा पान में, आतिशबाजी में, डिस्कों डांस में, नेतागिरी में, दहेज में, पार्टी में, शौक - सिनेमा में, सट्टे में धन को पानी जैसा बहा रहा है। अब उसके पास धन कहाँ से आ गया? समय कहाँ से आ गया? पाप के लिए धन व समय दोनों है, पुण्य के लिए नहीं। लगता है उसने अशुभ आयु का बन्ध कर लिया है तभी तो उसकी ऐसी प्रवृत्ति है। इसी प्रकार साधु कहता है मेरे पास सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, जाप व मौन के लिए, धर्म - ध्यान व चिंतन - मनन के लिए, उपगूहन, स्थिति करण, वात्सल्य, प्रभावना, धर्मोपदेश आदि के लिए समय नहीं है। तप - व्रत - उपवास, नीरस, रस त्याग करने के नाम पर शरीर में शक्ति नहीं है। उसी साधु के पास असंयमी से चर्चा करने, आत्म प्रशंसा व अन्य साधुओं की निंदा करने हेतु, वाद - विवाद करने हेतु, दूसरों को रिझाने, मनाने, डाँटने, फटकारने, अपनी धाक, रोब जमाने हेतु, विकथा करने हेतु, परिग्रह का संचय करने हेतु समय कहाँ से आ गया । असंयम में प्रवृत्ति करने हेतु, व्रतों में दोष लगाने हेतु, किसी को सताने हेतु शक्ति कहाँ से आ गई । अरे ! रात्री में तो पशु - पक्षी भी मौन रहते है, नदी, तालाब, कूप, सागर, वन, उपवन, पर्वतों पर भी शांति रहती है। तुम भी तीनों योगों से शांत हो जाओ । तीनो योगों से शांत न हो सको तो दो योगों से या एक - वचन योग से ही शांत हो जाओ । दुनियाँ भोगों में डूबी है तुम अपनी योग साधना में डूब जाओ ।